महाकवि कालिदास प्रणीत

कुमारसम्भव

का

हिन्दी-गद्य में भावार्थ-बोधक अनुवाद

रचयिता

महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

१९२३

द्वितीय बार] सर्वाधिकार रक्षित [मूल्य १)

Published by K. K. Mittra at the Indian Press,
Limited, Allahabad.

भूमिका ।

हमारे हिन्दी-रघुवंश की पहली आवृत्ति की कापियाँ बहुत शीघ्र निकल गईं। इससे सूचित हुआ कि ऐसी पुस्तकों की माँग है। संस्कृत-काव्यों के इस तरह के गद्यात्मक अनुवादों से पाठकों को हमारे प्राचीन महाकवियों की रचना, उनकी विचार-परम्परा और उनके वर्णन-वैचित्र्य का भी ज्ञान हो जाता है और भारत की प्राचीन सामाजिक, धार्म्मिक और राजनैतिक व्यवस्था का भी थोड़ा बहुत हाल मालूम हो जाता है। इसीसे लोग ऐसी पुस्तकों को चाव से पढ़ते हैं। इनसे मनोरञ्जन के साथ साथ ज्ञान-प्राप्ति भी होती है, अपने देश और अपने पूर्वजों पर श्रद्धा भी बढ़ती है, और अपनी भाषा पर भी प्रेम उत्पन्न होता है। ऐसी पुस्तकों की भाषा यदि सरल हुई तो पाठकों की संख्या और भी बढ़ जाती है; आबाल-वृद्ध और स्त्री-पुरुष सभी उनसे लाभ उठा सकते हैं। एक तो संस्कृतज्ञों की संख्या बहुत कम है। दूसरे प्राचीन काव्यों के पद्यात्मक अनुवादों में मूल की सरसता लाना और कवि के भावों को सर्व-साधारण के बोधगम्य बनाना बहुत कठिन काम है। अतएव मूल काव्य पढ़ कर बहुत ही थोड़े लोग उनसे आनन्द-प्राप्ति कर सकते हैं। रहे पद्यात्मक अनुवाद, सो पूर्वोक्त कारणों से अब तक उनसे भी अधिक-संख्यक लोग लाभ नहीं उठा सके। इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर हम आज कालिदास के दूसरे महाकाव्य कुमारसम्भव का भी गद्यात्मक अनुवाद हिन्दी में सुलभ किये देते हैं।

कालिदास के वर्णनात्मक काव्यों में तीन काव्य मुख्य हैं—

रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत। इनमें से रघुवंश का गद्यात्मक अनुवाद प्रकाशित ही हो चुका है। आज कुमारसम्भव का भी अनुवाद पाठकों के सामने उपस्थित है। इस काव्य में सत्रह सर्ग हैं। परन्तु पहले के आठ ही सर्ग कालिदासकृत माने जाते हैं। विद्वानों की राय है कि पिछले नौ सर्ग किसी ने पीछे से जोड़ दिये हैं। यह बात इन पिछले नौ सर्गों की रचना और कविता से भी पुष्ट होती है। इसके सिवा पञ्च-महाकाव्यों पर टीका लिखने वाले मल्लिनाथ की लिखी हुई टीका भी इसके आरम्भिक आठ ही सर्गों की उपलब्ध है। पिछले नौ सर्गों की टीका सीताराम-नामक किसी दाक्षिणात्य पण्डित की लिखी हुई मिलती है। इससे भी इस बात की पोषकता होती है कि मल्लिनाथ के समय में भी कुमारसम्भव के आठही सर्ग कालिदास-कृत माने जाते थे। इसीसे हमने भी आठही सर्गों का अनुवाद किया है।

यह अनुवाद भी ठीक उसी ढंग का है जिस ढंग का कि रघुवंश का अनुवाद है। इसमें भी हमने कालिदास का भाव-मात्र हिन्दी में लिखा है; उनके शब्दों पर कम ध्यान दिया है, आशय पर अधिक। आशय को अच्छी तरह प्रकट करने के लिए हमने यथेच्छ शब्द-प्रयोग किया है। यहाँ तक कि, आवश्यकता होने पर, हमने मूल भाव का विस्तार भी कर दिया है। आशा है, इससे कालिदास का आशय समझने में पढ़ने वालों को बहुत सुभीता होगा। भावही प्रधान है, शब्द-स्थापना गौण। शब्दों का प्रयोग तो केवल भाव प्रकट करने के लिए होता है। अतएव भाव-प्रदर्शक अनुवाद ही उत्तम अनुवाद है।

इस अनुवाद को बच्चों और कुल-कामिनियों के भी पढ़ने योग्य बनाने के लिए हमने एक बात और भी की है। रघुवंश के सदृश इस में भी यत्र तत्र जो विशेष शृङ्गार-रसात्मक भाव

आ गये हैं उनको या तो हमने छोड़ दिया है या कुछ परिवर्तित रूप में प्रकारान्तर से लिख दिया है। परन्तु पहले सात सर्गों में ऐसे स्थल दो ही चार हैं, अधिक नहीं। हाँ, आठवें सर्ग में इस तरह के कोई बीस पच्चीस श्लोक अवश्य हैं। अतएव विशेषतः उसी सर्ग में ऐसे स्थलों से अधिक बचना पड़ा है।

कालिदास कब हुए? उन्होंने किन किन पुस्तकों की रचना की? उनके काव्यों और नाटकों की इतनी प्रशंसा क्यों है? इन तथा कालिदास-सम्बन्धिनी अन्यान्य बातों की मीमांसा हमने अपने गद्यात्मक रघुवंश की भूमिका में विस्तारपूर्वक की है। अतएव यहाँ पर उसकी पुनरुक्ति अनावश्यक है।

दौलतपुर, रायबरेली
८ अप्रेल १९१५

महावीरप्रसाद द्विवेदी

कुमारसम्भव।

पहला सर्ग।

पार्वती का जन्म।

उत्तर दिशा में हिमालय नाम का एक पर्वत है। यह वही दिशा है जिस में विशेष करके देवता रहते हैं। इस पर्वत की भी आत्मा का अधिष्ठाता एक देवता है। इसी से इसका सारा जीवन-व्यापार देवताओं के सदृश है। यह ऐसा वैसा पर्वत नहीं; पर्वतों का राजा है। इसका एक छोर पूर्वी समुद्र को छूता है, दूसरा पश्चिमी समुद्र को। इन दोनों समुद्रों के बीचों बीच यह स्थित है। इसकी इस प्रकार की स्थिति देख कर ऐसा मालूम होता है जैसे पृथ्वी की माप करने के लिए किसी ने मानदण्ड रख दिया हो। खेत मापने के लिए जैसे बाँस का लट्ठा काम में लाया जाता है वैसे ही पृथ्वी मापने के लिए यह भी एक प्रकार का लम्बा चौड़ा लट्ठा सा जान पड़ता है। यह तो इसकी स्थिति, आकार और आत्मा का हाल है। अब इस की और और बातें भी सुन लीजिए।

पृथु नाम का एक राजा हो गया है। उसने गाय के रूप में पृथ्वी को दुहने की ठानी। अपनी इच्छा उस ने सारे पर्वतों

पर प्रकट की। उन्होंने हिमालय को तो बछड़ा और दुहने में दक्ष सुमेरु पर्वत को दूध दुहने वाला बनाया। गोरूप-धारिणी पृथ्वी जो इस प्रकार दुही गई तो अनन्त दीप्तिमान रत्नों और सञ्जीवनी आदि अनन्त अनमोल ओषधियों की प्राप्ति हुई—अर्थात् उसका दूध रत्नों और ओषधियों में परिणत हो गया। बछड़े पर गाय का विशेष प्रेम होने के कारण अपने दूध का सार अंश वह उसी को पिलाती है। गोरूपिणी पृथ्वी का बछड़ा हिमालय था। इसी कारण सबसे अच्छे रत्न और ओषधियाँ उसी को मिलीं। अवशिष्ट का अधिकांश सुमेरु ने लिया। जो कुछ बचा उसे और पर्वतों ने बाँट लिया। पर्वतों पर ओषधियाँ मिलने और सोने, चाँदी तथा हीरे आदि रत्नों की खानियाँ होने का यही कारण है। पृथु और पृथ्वी की बदौलत इस सौदे में हिमालय ही सब से अच्छा रहा। तथापि इस पर्वतराज पर एक बात ऐसी है जो खटकनेवाली है। इस पर बर्फ़ बहुत जमा रहता है। बर्फ़ से इसका अधिकांश प्रायः ढका ही रहता है। परन्तु इस एक छोटे से दोष से इसकी महिमा कम नहीं होती। बात यह है कि जहाँ सैकड़ों-हज़ारों गुण हैं वहाँ एक ज़रा से दोष के कारण किसी के महत्त्व में कमी नहीं आ सकती। देखिए, चन्द्रमा में भी तो कलङ्क है। परन्तु उस की किरण-राशि में वह ऐसा डूब जाता है कि उस पर लोगों की दृष्टि बहुत ही कम जाती है।

इस पर्वत के शिखर बहुत ऊँचे हैं। वे मेघों को छुआ करते हैं। शिखरों पर टकराने से मेघों के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। इन शिखरों पर गेरू और सिन्दूर आदि के ढेर के ढेर पड़े रहते हैं। उनके स्पर्श से मेघखण्ड भी लाल रङ्ग के हो जाते हैं। इसके ये शिखर और उन शिखरों के ऊपर छाये हुए लाल लाल मेघ देख कर अप्सराओं को असमय में ही सन्ध्या हो जाने का भ्रम होता

है। इस कारण वे उसी समय श्रृङ्गार करना आरम्भ कर देती हैं। वे समझती हैं कि अब तो रात होने ही को है। लाओ विलास की सामग्रियों से शरीर को अलङ्कृत कर लें। हिमालय के शिखरों में उत्पन्न ये सिन्दूर आदि पदार्थ इन अप्सराओं के बड़े काम के हैं। इन्हीं से वे तिलक-रचना करती हैं और इन्हीं से वे अपनी माँगें भी भरती हैं।

इस पर्वत के ऊँचे ऊँचे शिखरों पर सैकड़ों सिद्ध पुरुष रहते हैं। वहाँ जब वे धूप से तङ्ग आ जाते हैं तब नीचे वाले शिखरों पर उतर आते हैं। इन नीचेवाले शिखरों पर मेघ छाये रहते हैं; वहीं पर नहीं, वे तो कभी कभी और नीचे, पर्वत की जड़ तक, चले आते हैं। मेघों के छाये रहने से इन सब शिखरों पर छाया हो जाती है। उसी छाया में उच्चशिखरवासी सिद्ध पुरुष आनन्दपूर्वक विश्राम करते हैं। परन्तु जब मेघ बरसने लगते हैं तब उन्हें यहाँ भी कष्ट होता है। अतएव वे फिर ऊपर वाले शिखरों पर चढ़ जाते हैं। वहाँ धूप रहती है। वृष्टि का डर वहाँ नहीं, क्योंकि मेघ उतने ऊंचे जा ही नहीं सकते। वहाँ सदा ही सूर्य का प्रकाश रहता है।

हिमालय पर न हाथियों की कमी है, न शेरों की। इससे हाथियों और शेरों में बहुधा मुठभेड़ हो जाया करती है। वहां के विशालकाय हाथियों के मस्तकों में गजमोती रहते हैं। जब शेर अपने पञ्जों से उनके मस्तकों पर आक्रमण करते हैं तब वे मोती उनके नाख़ूनों से छिद जाते हैं और पञ्जों ही में अटक रहते हैं। जब ऐसे शेरों का शिकार किरात लोग करते हैं तब वे घायल होकर बेतहाशा भागते हैं। उनके शरीर से रुधिर टपकता जाता है और वे भागते जाते हैं। शिकार किधर गया, इसका पता शिकारी लोग टपके हुए रुधिर के बूँद देख कर ही लगाते हैं। परन्तु हिमालय पर बर्फ़ की वृष्टि हुआ करती है। इस कारण

रुधिर के बूँद गिरते ही बर्फ़ से धुल जाते हैं। इस दशा में यदि एक बात न होती तो किरातों को घायल शेरों का पता लगाने में बड़ी कठिनाई पड़ती। वह बात यह है कि इन शेरों के नाख़ूनों में छिदे हुए गजमोती, वेग से दौड़ते समय, ज़मीन पर बिखरते चले आते हैं। उन्हीं को देख कर किरात उनका पीछा करते हैं और उन्हें ढूँढ़ निकालते हैं।

इस पर्वत पर भूर्ज्ज नाम के वृक्ष अधिकता से पाये जाते हैं। उनकी छाल लिखने के काम आती है। उसे भोजपत्र कहते हैं। हाथी के मस्तक पर जैसे लाल लाल बिन्दु होते हैं वैसे ही बिन्दु इन वृक्षों की छाल, अर्थात् भोजपत्र, पर भी होते हैं। इन बिन्दुओं के कारण यह छाल बहुत ही सुन्दर मालूम होती है। काग़ज़ की जगह इसी भोजपत्र पर गेरू और सिन्दूर से अपने मन की शृङ्गार-रस-सम्बन्धिनी बातें लिख लिख कर विद्याधरों की स्त्रियाँ अपने पतियों और सखियों को भेजती हैं। यह पर्वत दया करके इन स्त्रियों को काग़ज़ और स्याही दोनों चीज़ें देकर इनके मनो-भिलाष को पूर्ण करता है।

इसकी किस किस बात का वर्णन किया जाय। इस पर कन्दरायें भी सैकड़ों हैं और बाँस के जङ्गल भी जगह जगह हैं। अपने इन कन्दरारूपी मुखों से निकली हुई वायु को यह पर्वत बाँसों के छेदों में इस तरह भर देता है कि उन छेदों से बाँसुरी की जैसी ध्वनि निकलने लगती है। इस पर किन्नर लोगों की भी बस्तियाँ हैं। ये गाने-बजाने का पेशा करते हैं। गाने में ये बड़े ही प्रवीण होते हैं। जिस समय यह पर्वत बाँसों से सुरीली ध्वनि निकालता है उस समय ऐसा मालूम होता है मानों गाने में किन्नरों को सहायता पहुँचाने के लिए यह तान सा तोड़ रहा है।

इस पर साल के वृक्षों की भी कमी नहीं। हाथियों की

कनपटी जब खुजलाती है तब वे इन्हीं वृक्षों के तने पर उन्हें बड़े ज़ोर से रगड़ते हैं । इससे इन वृक्षों की छाल कट जाती है और कटी हुई जगह से दूध टपकने लगता है । इस दूध से बड़ी मनोहर सुगन्धि निकलती है । उससे इसके सारे शिखर सुगन्धित हो जाते हैं ।

इसकी गुफाओं में कोल, भील और किरात आदि जङ्गली मनुष्य रहते हैं । ये गुफायें ही इन लोगों के घर हैं । इनके साथ इनकी स्त्रियाँ भी रहती हैं । हिमालय की कृपा और उदारता से इन लोगों को तेल के दीपक नहीं जलाने पड़ते । इस पर्वत पर ऐसी कितनी ही ओषधियाँ हैं जो सदा चमका करती हैं । इन ओषधियों की कान्ति गुफाओं के भीतर तक फैल जाती है और उन्हें यथेच्छ प्रकाशित कर देती है । रात के समय उसी उजेले में ये गुफावासी किरात आदि सुखपूर्वक विहार करते हैं । परन्तु कभी कभी कुतूहल में आकर यह पर्वत किन्नरों की स्त्रियों को तङ्ग भी करता है । इसके ऊपर बर्फ़ जमकर पत्थर सी हो जाती है । उस पर चलते समय किन्नरों की स्त्रियों के पैरों की अँगुलियाँ ठिठुरने लगती हैं । इसके ऊपर जितने रास्ते हैं सबकी यही दशा हो जाती है । पैरों ही को नहीं, किन्तु सारे शरीर को कँपाने वाले ऐसे रास्तों को यथासम्भव शीघ्र ही पार करने की इच्छा किन्नर-नारियों को होती है । परन्तु नितम्ब आदि के बहुत भारी होने के कारण, उनके बोझ से दबी हुई ये बेचारी किन्नरियाँ शीघ्रतापूर्वक नहीं चल सकतीं । उन्हें धीरे ही धीरे चलना पड़ता है । वे मन्द गमन करने के लिए विवश हो जाती हैं । शायद उनका मन्द गमन इस पर्वत को बहुत पसन्द है ।

खेल की बात जाने दीजिए । स्वभाव से यह उदार ही नहीं, शरणागत-रक्षक भी है । सूर्य के डर से भाग कर अन्ध-

कार इसकी कन्दराओं के भीतर उलूक पक्षी की तरह छिप जाता है। परन्तु उस नीच और क्षुद्र अन्धकार की भी यह रक्षा करता है। उसे निकाल नहीं बाहर करता। बात यह है कि उदाराशय सज्जन शरण में आये हुए नीच से भी नीच जनों का तिरस्कार नहीं करते, बड़ी ममता से वे उनका पालन करते हैं।

इसके ऊपर अनन्त सुरागायें इधर उधर घूमा करती हैं। उनकी पूँछ के बाल, चन्द्रमा की किरणों के समान, सफ़ेद और चमकीले होते हैं। उन्हीं बालों के चमर बनते हैं। जिस समय वे अपनी पूँछें हिलाती हुईं इधर उधर विचरती हैं उस समय वे बहुत ही शोभायमान दिखाई देती हैं। ऐसे समय यह मालूम पड़ता है कि इस पर्वत के ऊपर चमर से चल रहे हैं। तब इसका गिरिराज नाम सचमुच ही यथार्थ हो जाता है। क्योंकि चमर राजों ही पर चलते हैं और यह भी पर्वतों का राजा है।

इस पर्वत की मनोहारिणी कन्दराओं में किन्नर लोग बहुधा विहार किया करते हैं। यदि कभी उनकी स्त्रियों के शरीर से वस्त्र खिसक भी जाते हैं तो भी इस पर्वत की कृपा से उन्हें विशेष लज्जित नहीं होना पड़ता। क्योंकि इसकी कन्दराओं के द्वार पर लटके हुए काले मेघ परदे का काम देते हैं। किन्नरों ही को नहीं, जङ्गली किरातों को भी सुखी रखने का इसे सदा ध्यान रहता है। शिकार के लिए हिरनों को ढूँढ़ते ढूँढ़ते जब किरात लोग बहुत थक जाते हैं तब यह पर्वत शीतल और सुगन्धित पवन प्रवाहित करके उनकी थकावट दूर करता है। गङ्गाजी के झरनों से जल के कणों को अपने साथ लाने से इस की पवन में शीतलता आजाती है और मार्ग में देवदारु की डालियों को हिलाने से वह सुगन्धित भी हो जाती है। रास्ते में

यदि इस पवन को मोर मिल जाते हैं तो उनकी चित्र विचित्र पूँछों को हिला डुला कर वह उनके बाल बखेर देती है।

इसके ऊंचे ऊँचे शिखरों पर जो सरोवर हैं उन में कमल बहुत खिलते हैं। इन शिखरों से सप्तर्षियों की बस्ती बहुत दूर नहीं। इसलिए वे लोग अपने पूजा-पाठ के लिए इन कमल-पुष्पों को अपने हाथ से तोड़ ले जाते हैं। जो उन से बच जाते हैं उन्हें सूर्य अपनी ऊर्ध्वगामिनी किरणों से प्रफुल्लित करता है। बात यह है कि इस पर्वत के सबसे ऊंचे शिखर सूर्य-मण्डल से भी ऊंचे हैं। इसीसे सूर्य्य उन शिखरों के नीचे ही घूमा करता है और इसी से उसे उन सरोवरों के कमलों को अपनी ऊर्ध्व-गामिनी किरणों से प्रफुल्लित करना पड़ता है। उसकी अधो-गामिनी किरणों की तो वहाँ तक पहुंचही नहीं होती।

प्रजापति ब्रह्मा भी इसका बहुत आदर-सम्मान करता है। इसका एक कारण तो यह है कि यह पृथ्वी के धारण करने की शक्ति रखता है। यदि यह धरणी को धारण न करे तो उसका ठहरना कठिन हो जाय। यह उसे दबाये रहता है। दूसरे, यज्ञ-साधन की सामग्री भी इस से प्राप्त होती है। जो सोमलता यज्ञ में काम आती है वह इसी की कृपा से मिलती है। इसके इन्हीं गुणों के कारण ब्रह्मा ने शैलाधिराज की पदवी देकर इसे सारे पर्वतों का राजा बना दिया है और इसके लिए यज्ञ-भाग दिये जाने का नियम भी कर दिया है।

श्रुतियों और स्मृतियों में निर्दिष्ट की गई मर्यादा का पालन करना, यह अपना कर्तव्य समझता है। यह धर्म्मज्ञ भी है और वेदज्ञ भी। इसीसे इसने अपने कुल की रक्षा—अपने वंश की वृद्धि—के लिए पितरों की मेना नामक मानसी कन्या के साथ विधिपूर्वक विवाह किया। यह कन्या इसकी पत्नी होने के

सर्वथा अनुरूप थी। औरों की तो बात ही नहीं, बड़े बड़े ऋषि और मुनि भी इसका सम्मान करते थे। इसी से सुमेरु के साथी हिमालय ने मेना ही को पत्नी-पद के लिए उपयुक्त समझा। युवती मेना बहुत ही रूपवती थी। हिमालय के घर आने पर बहुत समय तक वह आनन्द से रहती रही। इसके बाद वह गर्भवती हुई। मेना के पहले गर्भ से मैनाक नामक नामी पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके गौरव का अनुमान इतने ही से कर लीजिए कि नागों की कन्याओं से तो उस का विवाह हुआ और रत्नाकर समुद्र से उसकी मित्रता हुई। क्रुद्ध हुए इन्द्र ने अपने वज्र से और सब पर्वतों के पङ्ख तो काट गिराये, परन्तु मैनाक उसके वज्राघात से साफ़ बच गया। उसे इन्द्र के कुलिश-प्रहार का कष्ट न सहन करना पड़ा। मैनाक को छोड़ कर यह सौभाग्य और किसी पर्वत को नहीं प्राप्त हुआ।

अपने पिता दक्ष प्रजापति के द्वारा अनादृत होने पर, शङ्कर की पहली पत्नी, सती ने अपने पिता ही की यज्ञ-शाला में योगियों के सदृश अपना शरीर छोड़ दिया था।

नया जन्म लेने के लिए उसने, मैनाक के कुछ बड़े होने पर, मेना के गर्भ में प्रवेश किया। नीति के प्रयोग में यदि उत्साहरूपी गुण से काम लिया जाय तो नीति बिगड़ती भी नहीं और उससे सम्पत्ति की भी उत्पत्ति होती है। जिस तरह ऐसे गुण का योग पाकर नीति से सम्पत्ति उत्पन्न होती है उसी तरह पर्वतों के राजा हिमालय के योग से मेना के सदाचार को धक्का भी न लगा और उससे कल्याणवती कन्या के रूप में सती का जन्म भी हुआ। जिस दिन उस कन्या का जन्म हुआ उस दिन जितने शरीरधारी स्थावर और जङ्गम थे सभी के आनन्द की सीमा न रही। दिशाओं ने निर्मलता धारण

की, वायु में धूल का नाम न रहा; सब कहीं शङ्ख बजे और फूलों की खूब वर्षा हुई ।

सुनते हैं, रत्नों की खानियाँ पर्वतों के सीमान्त, अर्थात् नीचे मूल-भूमि, में ही होती हैं। मेघगर्जना होने और पानी बरसने से वे खुल जाती हैं और रत्नों की शलाका—रत्नों की राशि—चमकने लगती है। उस रत्नराशि की चमक से उस भूमि की शोभा जैसे बहुत बढ़ जाती है उसी तरह प्रभामण्डल-धारिणी उस कन्यका से उसकी माता मेना की शोभा बहुत बढ़ गई। नवोदित चन्द्र-रेखा के समान वह कन्या दिन पर दिन बढ़ने लगी, और, जैसे चन्द्रमा की ज्योत्स्नामयी कलायें प्रति दिन पुष्ट होती जाती हैं उसी तरह उसके भी लावण्यपूर्ण अवयव पुष्ट होते गये ।

वह कन्या हिमालय के बन्धु-जनों की बहुत प्यारी हो गई। उन्होंने उसका नाम पार्वती रक्खा। उन्होंने कहा—यह पर्वत की कन्या है। इससे इसका यही नाम होना चाहिए। परन्तु पीछे से उसका नाम उमा भी हो गया। संस्कृत-भाषा में 'हे' के सदृश 'उ' भी सम्बोधन-सूचक है; और 'मा' का अर्थ निषेधात्मक, अर्थात् 'मत' है। जब पार्वती तपस्या करने के लिए वन जाने को तैयार हुई तब मेना ने—'उ मा'—(ऐसा मत कर) कह कर उसे रोका। इसीसे पार्वती को लोग उमा भी कहने लगे ।

हिमालय के एक पुत्र भी था। परन्तु यह कन्या उसे पुत्र से भी अधिक प्यारी हुई। उसे उसने कभी अपनी आँख की ओट न होने दिया। उसे बार बार देखने पर भी पिता की दृष्टि को तृप्ति न हुई। बात यह है कि प्रीति के पात्र सभी पदार्थ नहीं होते; बहुधा किसी विशेष वस्तु पर ही प्रेम का आधिक्य होता है। देखिए न, वसन्त-ऋतु की भ्रमर-पङ्क्ति के लिए फूलों की

कमी नहीं होती। क्योंकि उस ऋतु में अनन्त फूल खिलते हैं। परन्तु और सब को छोड़ कर वह आम की मञ्जरी ही पर अपना अनुराग अधिक प्रकट करती है।

बहुत अधिक प्रकाश देने वाली लौ से जिस तरह दीपक की, मन्दाकिनी नामक त्रिपथगा गङ्गा से जिस तरह देवलोक की और संस्कारवती विशुद्ध वाणी से जिस तरह विद्वान् की शोभा बढ़ जाती है, उसी तरह पार्वती से हिमालय की शोभा और पवित्रता दोनों ही बहुत बढ़ गईं।

कुछ बड़ी होने पर सखी-सहेलियों को लेकर पार्वती खेल-कूद में निमग्न रहने लगी। कभी वह उनके साथ गेंद खेलती, कभी गुड़िया खेलती और कभी गङ्गाजी की रेत में बालू की वेदियाँ बनाकर खेला करती। उस समय उसे अपने तन, मन की कुछ भी सुध न रहती। वह अपना आपा भूल जाती और खेल-कूद के रस-प्रवाह में घुस सी जाती। शरद् ऋतु में हंसों की पंक्तियाँ गङ्गा के तट पर आप ही आप आ जाती हैं। रात को सञ्जीवनी आदि ओषधियों को उनकी दीप्ति भी आप ही आप प्राप्त हो जाती है। जैसे ये सब बातें आप ही आप होती हैं वैसे ही विद्या-प्राप्ति के समय, संस्कारों की प्रेरणा से, पूर्व-जन्म में प्राप्त की हुई सारी विद्यायें भी पार्वती को प्राप्त हो गईं। वह बड़ी ही बुद्धिमती थी। इससे बहुत ही थोड़े परिश्रम और उपदेश से वह विदुषी हो गई।

धीरे धीरे उसकी बाल्यावस्था बीत गई; उसे तारुण्य की प्राप्ति हुई। यह तारुण्य एक अद्भुत वस्तु है। इसके प्रभाव से बिना किसी प्रकार का शृङ्गार किये ही शरीर के सारे अवयवों में अपूर्व सुन्दरता आ जाती है। इसके प्रभाव से बिना मद्यपान किये ही नशा सा चढ़ जाता है। सुनते हैं, अनङ्गदेव फूलों ही से अस्त्रों का काम लेता है। परन्तु यौवन भी तो उसका अस्त्र

ही है। वह उससे भी वही काम लेता है जो फूलों के अस्त्रों से लेता है।

नव-यौवन के संयोग से पार्वती का प्रत्येक अङ्ग शोभा और सुन्दरता से परिपूर्ण हो गया। जो अङ्ग जैसा होना चाहिए वह वैसा ही हो गया। गुरुता और क्षीणता में कहीं भी न्यूनाधिकता न रही। सौन्दर्य ने उसके अवयवों को अपना घर सा बना लिया। रङ्ग के योग से जिस तरह चित्र का सौन्दर्य बहुत बढ़ जाता है और सूर्य की किरणों के स्पर्श से जिस तरह कमल का फूल खूब खिल उठता है उसी तरह नवीन प्राप्त हुए यौवन ने पार्वती के शरीर को सौन्दर्यमय कर दिया।

उसके पैरों के नख इतनी लाली लिये हुए थे कि जिस समय वह अंगूठे को उठाती हुई चलती उस समय नखों की आभा सब तरफ़ फैल जाती और ऐसा मालूम होता कि वह लाल रङ्ग छिड़कती हुई चली जाती है। यदि कमल थल में खिलते और वे सञ्चरणशील भी होते, अर्थात् वे चलते भी, तो पार्वती के चरणों से उन्हें अवश्य ही हार माननी पड़ती। अर्थात् उसने स्थल-कमलों की चञ्चलता-पूर्ण शोभा को अच्छी तरह हर लिया। चलते समय वह कुछ झुकी हुई सी मालूम पड़ती। वह बड़ी ही लीलाललाम-गति से धीरे धीरे पैर रखती। उसे इस तरह चलते देख यह शङ्का होती कि कहीं राजहंसों ने तो इसे इस प्रकार मन्दगमन करना नहीं सिखाया? हंसों की चाल तो अवश्य अच्छी है, परन्तु उनका शब्द वैसा अतिमधुर नहीं। पार्वती के नूपुरों से जैसा मनोहर और कर्णसुखद शब्द होता था उसके सामने हंसों के कलरव बहुत ही फीके थे। अतएव, सम्भव है, राजहंसों ने इस आशा से अपनी लीलाललाम-गति पार्वती को सिखाई हो कि वह भी हमें अपने नूपुरों की जैसी मीठी ध्वनि सिखा दे।

मालूम होता है, पार्वती की जङ्घाओं का निर्माण करने में ब्रह्मा ने सचमुच ही कमाल कर दिया। उसने उन्हें बहुत ही सुन्दर बनाया। न उन्हें बहुत बड़ी ही कर दिया, न बहुत छोटी ही। साथ ही उनकी गुलाई और मांसलता के क्रम में भी कमी न होने दी। उन्हें उसने ठीक गावदुम बनाया। उसकी जङ्घाओं को लावण्यमय बनाने में ही अपनी सारी कारीगरी उसने ख़र्च सी कर दी। अतएव और अङ्गों में लावण्य उत्पन्न करते समय उसे अवश्य ही बहुत अधिक यत्न और परिश्रम करना पड़ा होगा। अच्छा तो पार्वती की ऐसी मनोहारिणी और लावण्यमयी जङ्घाओं की उपमा किससे दी जाय? गजराज की सूँड़ से तो दी ही नहीं जा सकती; क्योंकि उसकी त्वचा बहुत ही कर्कश होती है। रहा कदली-स्तम्भ, सो वह भी उपमा के योग्य नहीं, क्योंकि उसमें शीतलता बहुत अधिक होती है। आकार में यद्यपि ये दोनों पदार्थ संसार में प्रशंसनीय कहे जा सकते हैं, तथापि पूर्वोक्त दोषों के कारण पार्वती के ऊरुद्वय के उपमान होने की योग्यता इनमें नहीं। अतएव इस सम्बन्ध में उपमा ढूँढ़ निकालने का झंझट न करना ही अच्छा है।

पार्वती के कटिपश्चाद्भाग की सुन्दरता का अनुमान इतने ही से कर लीजिए कि शङ्कर के जिस अङ्क की प्राप्ति की कामना तक कोई और स्त्री नहीं कर सकी वहीं उसे बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

पार्वती की मेखला, अर्थात् करधनी, में लगी हुई इन्द्रनील मणि की श्यामल प्रभा के समान सुन्दर, उस कृशाङ्गी की नवीन रोमावली, नीवी को पार कर के, उस की नम्र नाभि में प्रवेश कर गई। क्षीणकटि पार्वती की त्रिवली को देख कर मन में यह विचार उत्पन्न होने लगा कि त्रिवली के बहाने नव-यौवनरूपी कारीगर ने काम के चढ़ने के लिए तीन सीढ़ियाँ तो

नहीं बना दीं। रोमावली और त्रिवली की तरह पार्वती के वक्षःस्थल में भी अपूर्व शोभा का सञ्चार हुआ। उसकी भी उन्नति हो गई और सुन्दरता बढ़ गई।

फूल बहुत ही कोमल वस्तु है। सिरसे के फूल में और भी अधिक कोमलता होती है। जितने फूल हैं, सुकुमारता में सिरसे के फूल की बराबरी एक भी नहीं कर सकता। परन्तु मेरी समझ में पार्वती के बाहु सिरसे के फूल से भी अधिक सुकुमार हैं। क्योंकि, एक बार परास्त होकर भी अनङ्गदेव ने देवों के भी देव महादेव के कण्ठ में उन्हीं की फाँसी डाली। जो बात कोमल से भी कोमल फूल के बाणों, से नहीं हो सकी वही बात, महादेव जी के कण्ठ में पड़कर, पार्वती के बाहुओं ने कर दिखाई। उनके अधिक सुकुमार होने का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है।

पार्वती के सुन्दर शङ्खाकार कण्ठ ने और उस पर पड़े हुए बड़े बड़े गोल मोतियों के हार ने परस्पर एक दूसरे की शोभा बहुत ही बढ़ा दी। कण्ठ पर पड़ी हुई मुक्तामाला को देख कर इस बात का निश्चय करना कठिन हो गया कि पार्वती के सु-चारु सुन्दर कण्ठ से उस माला की शोभा अधिक होगई अथवा उस माला के संयोग से कण्ठ की शोभा बढ़ गई। इन दोनों के संयोग से भूष्य और भूषण-भाव में भेद ही न रह गया।

सुन्दरतारूपिणी लक्ष्मी का स्वभाव बहुत ही चञ्चल है। वह एक जगह स्थिर होकर नहीं रहती। कभी कमल में रहने चली जाती है और कभी चन्द्रमा में। परन्तु जब वह कमल में वास करती है तब चन्द्रमा की अमृतवत् आनन्ददायिनी शोभा से हाथ धो बैठती है। और जब वह चन्द्रमा में जा रहती है तब कमल की सुगन्धि और कोमलता आदि गुणों से वञ्चित हो जाती है। परन्तु पार्वती के मुख का आश्रय लेने पर उसे इन

मालूम होता है, पार्वती की जङ्घाओं का निर्म्माण करने में ब्रह्मा ने सचमुच ही कमाल कर दिया। उसने उन्हें बहुत ही सुन्दर बनाया। न उन्हें बहुत बड़ी ही कर दिया, न बहुत छोटी ही। साथ ही उनकी गुलाई और मांसलता के क्रम में भी कमी न होने दी। उन्हें उसने ठीक गावदुम बनाया। उसकी जङ्घाओं को लावण्यमय बनाने में ही अपनी सारी कारीगरी उसने ख़र्च सी कर दी। अतएव और अङ्गों में लावण्य उत्पन्न करते समय उसे अवश्य ही बहुत अधिक यत्न और परिश्रम करना पड़ा होगा। अच्छा तो पार्वती की ऐसी मनोहारिणी और लावण्य-मयी जङ्घाओं की उपमा किससे दी जाय? गजराज की सूँड़ से तो दी ही नहीं जा सकती; क्योंकि उसकी त्वचा बहुत ही कर्कश होती है। रहा कदली-स्तम्भ, सो वह भी उपमा के योग्य नहीं, क्योंकि उसमें शीतलता बहुत अधिक होती है। आकार में यद्यपि ये दोनों पदार्थ संसार में प्रशंसनीय कहे जा सकते हैं, तथापि पूर्वोक्त दोषों के कारण पार्वती के ऊरुद्वय के उपमान होने की योग्यता इनमें नहीं। अतएव इस सम्बन्ध में उपमा ढूँढ़ निकालने का झंझट न करना ही अच्छा है।

पार्वती के कटिपश्चाद्भाग की सुन्दरता का अनुमान इतने ही से कर लीजिए कि शङ्कर के जिस अङ्क की प्राप्ति की कामना तक कोई और स्त्री नहीं कर सकी वहीं उसे बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

पार्वती की मेखला, अर्थात् करधनी, में लगी हुई इन्द्रनील मणि की श्यामल प्रभा के समान सुन्दर, उस कृशाङ्गी की नवीन रोमावली, नीवी को पार कर के, उस की नम्र नाभि में प्रवेश कर गई। क्षीणकटि पार्वती की त्रिवली को देख कर मन में यह विचार उत्पन्न होने लगा कि त्रिवली के बहाने नव-यौवनरूपी कारीगर ने काम के चढ़ने के लिए तीन सीढ़ियाँ तो

नहीं बना दीं। रोमावली और त्रिवली की तरह पार्वती के वक्षःस्थल में भी अपूर्व शोभा का सञ्चार हुआ। उसकी भी उन्नति हो गई और सुन्दरता बढ़ गई।

फूल बहुत ही कोमल वस्तु है। सिरसे के फूल में और भी अधिक कोमलता होती है। जितने फूल हैं, सुकुमारता में सिरसे के फूल की बराबरी एक भी नहीं कर सकता। परन्तु मेरी समझ में पार्वती के बाहु सिरसे के फूल से भी अधिक सुकुमार हैं। क्योंकि, एक बार परास्त होकर भी अनङ्गदेव ने देवों के भी देव महादेव के कण्ठ में उन्हीं की फाँसी डाली। जो बात कोमल से भी कोमल फूल के बाणों से नहीं हो सकी वही बात, महादेव जी के कण्ठ में पड़कर, पार्वती के बाहुओं ने कर दिखाई। उनके अधिक सुकुमार होने का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है।

पार्वती के सुन्दर शङ्खाकार कण्ठ ने और उस पर पड़े हुए बड़े बड़े गोल मोतियों के हार ने परस्पर एक दूसरे की शोभा बहुत ही बढ़ा दी। कण्ठ पर पड़ी हुई मुक्तामाला को देख कर इस बात का निश्चय करना कठिन हो गया कि पार्वती के सुचारु सुन्दर कण्ठ से उस माला की शोभा अधिक होगई अथवा उस माला के संयोग से कण्ठ की शोभा बढ़ गई। इन दोनों के संयोग से भूष्य और भूषण-भाव में भेद ही न रह गया।

सुन्दरतारूपिणी लक्ष्मी का स्वभाव बहुत ही चञ्चल है। वह एक जगह स्थिर होकर नहीं रहती। कभी कमल में रहने चली जाती है और कभी चन्द्रमा में। परन्तु जब वह कमल में वास करती है तब चन्द्रमा की अमृतवत् आनन्ददायिनी शोभा से हाथ धो बैठती है। और जब वह चन्द्रमा में जा रहती है तब कमल की सुगन्धि और कोमलता आदि गुणों से वञ्चित हो जाती है। परन्तु पार्वती के मुख का आश्रय लेने पर उसे इन

मालूम होता है, पार्वती की जङ्घाओं का निर्म्माण करने में ब्रह्मा ने सचमुच ही कमाल कर दिया। उसने उन्हें बहुत ही सुन्दर बनाया। न उन्हें बहुत बड़ी ही कर दिया, न बहुत छोटी ही। साथ ही उनकी गुलाई और मांसलता के क्रम में भी कमी न होने दी। उन्हें उसने ठीक गावदुम बनाया। उसकी जङ्घाओं को लावण्यमय बनाने में ही अपनी सारी कारीगरी उसने ख़र्च सी कर दी। अतएव और अङ्गों में लावण्य उत्पन्न करते समय उसे अवश्य ही बहुत अधिक यत्न और परिश्रम करना पड़ा होगा। अच्छा तो पार्वती की ऐसी मनोहारिणी और लावण्य-मयी जङ्घाओं की उपमा किससे दी जाय? गजराज की सूँड से तो दी ही नहीं जा सकती; क्योंकि उसकी त्वचा बहुत ही कर्कश होती है। रहा कदली-स्तम्भ, सो वह भी उपमा के योग्य नहीं, क्योंकि उसमें शीतलता बहुत अधिक होती है। आकार में यद्यपि ये दोनों पदार्थ संसार में प्रशंसनीय कहे जा सकते हैं, तथापि पूर्वोक्त दोषों के कारण पार्वती के ऊरुद्वय के उपमान होने की योग्यता इनमें नहीं। अतएव इस सम्बन्ध में उपमा ढूंढ़ निकालने का झंझट न करना ही अच्छा है।

पार्वती के कटिपश्चाद्भाग की सुन्दरता का अनुमान इतने ही से कर लीजिए कि शङ्कर के जिस अङ्क की प्राप्ति की कामना तक कोई और स्त्री नहीं कर सकी वहीं उसे बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

पार्वती की मेखला, अर्थात् करधनी, में लगी हुई इन्द्रनील मणि की श्यामल प्रभा के समान सुन्दर, उस कृशाङ्गी की नवीन रोमावली, नीवी को पार कर के, उस की नम्र नाभि में प्रवेश कर गई। क्षीणकटि पार्वती की त्रिवली को देख कर मन में यह विचार उत्पन्न होने लगा कि त्रिवली के बहाने नव-यौवनरूपी कारीगर ने काम के चढ़ने के लिए तीन सीढ़ियाँ तो

नहीं बना दीं। रोमावली और त्रिवली की तरह पार्वती के वक्षःस्थल में भी अपूर्व शोभा का सञ्चार हुआ। उसकी भी उन्नति हो गई और सुन्दरता बढ़ गई।

फूल बहुत ही कोमल वस्तु है। सिरसे के फूल में और भी अधिक कोमलता होती है। जितने फूल हैं, सुकुमारता में सिरसे के फूल की बराबरी एक भी नहीं कर सकता। परन्तु मेरी समझ में पार्वती के बाहु सिरसे के फूल से भी अधिक सुकुमार हैं। क्योंकि, एक बार परास्त होकर भी अनङ्गदेव ने देवों के भी देव महादेव के कण्ठ में उन्हीं की फाँसी डाली। जो बात कोमल से भी कोमल फूल के बाणों से नहीं हो सकी वही बात, महादेव जी के कण्ठ में पड़कर, पार्वती के बाहुओं ने कर दिखाई। उनके अधिक सुकुमार होने का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है।

पार्वती के सुन्दर शङ्खाकार कण्ठ ने और उस पर पड़े हुए बड़े बड़े गोल मोतियों के हार ने परस्पर एक दूसरे की शोभा बहुत ही बढ़ा दी। कण्ठ पर पड़ी हुई मुक्तामाला को देख कर इस बात का निश्चय करना कठिन हो गया कि पार्वती के सुचारु सुन्दर कण्ठ से उस माला की शोभा अधिक हो गई अथवा उस माला के संयोग से कण्ठ की शोभा बढ़ गई। इन दोनों के संयोग से भूष्य और भूषण-भाव में भेद ही न रह गया।

सुन्दरतारूपिणी लक्ष्मी का स्वभाव बहुत ही चञ्चल है। वह एक जगह स्थिर होकर नहीं रहती। कभी कमल में रहने चली जाती है और कभी चन्द्रमा में। परन्तु जब वह कमल में वास करती है तब चन्द्रमा की अमृतवत् आनन्ददायिनी शोभा से हाथ धो बैठती है। और जब वह चन्द्रमा में जा रहती है तब कमल की सुगन्धि और कोमलता आदि गुणों से वञ्चित हो जाती है। परन्तु पार्वती के मुख का आश्रय लेने पर उसे इस

दोनों प्रकार के गुणों की प्राप्ति का लाभ हुआ। क्योंकि, चन्द्रमा और कमल दोनों के गुण उमा के मुख में विद्यमान थे।

पार्वती के लाल लाल विशद ओठों पर फैली हुई मधुर मुसकान की अनुरूपता किसी और वस्तु में ढूंढ़ निकालना बड़ा कठिन काम है। उसकी समता का मिलना दुष्प्राप्य ही समझिए। हाँ, यदि सफ़ेद रङ्ग का फूल नये निकले हुए लाल लाल कोमल पत्ते पर रख दिया जाय अथवा यदि शुभ्र मुक्ता-फल निर्मल मूँगे पर स्थित हो जाय तो कहीं पार्वती के मुसकान की कुछ बराबरी कर सके तो कर सके।

पार्वती की वाणी की मधुरिमा का मैं कैसे वर्णन करूँ। जिस समय वह बोलती थी, मालूम होता था कि उसके कण्ठ से सुधा की धारा बह रही है। उस समय कोकिल का कलरव भी अनमिल वीणा के स्वर के समान, सुनने वालों के कानों को बुरा मालूम होता था। कोकिल की मधुरिमामयी वाणी भी पार्वती के मधुर भाषण के सामने कर्णकठोर ज्ञात होती थी।

उसकी चकित चितवन उन नील कमलों की भी शोभा और चञ्चलता से अधिक शोभामयी और चञ्चल थी जो पवन-पूर्ण स्थान में होने के कारण ख़ूब इधर उधर हिलते हैं। उसकी ऐसी चाञ्चल्य-पूर्ण दृष्टि को देख कर कभी तो मन में यह बात आती कि उसने उसे हरिणियों से सीखा है और कभी यह शङ्का होती कि नहीं, इस तरह की दृष्टि इसीने हरिणियों को सिखाई है।

शैलबाला पार्वती की भृकुटियाँ बहुत बड़ी और काली थीं। वे ऐसी थीं, मानो सलाई से काजल की दो रेखायें खींच दी गई हों। ऐसी विलास-सुभग और काली काली दीर्घ भौंहों को देख कर, बेचारे काम का, अपने धन्वा के सौन्दर्य से सम्बन्ध

रखने वाला, सारा गर्व क्षण में छूट गया। तब तक वह यही समझता था कि वक्रता और सुन्दरता आदि के सम्बन्ध में मेरे धनुष की बराबरी करने वाला संसार में और कोई पदार्थ नहीं। पार्वती की भौंहों ने उसके इस भ्रम को समूल दूर कर दिया।

चमरी नाम की सुरागायें यह समझती हैं कि हमारे बाल बड़े ही कोमल और बड़े ही मनोहारी हैं। यदि इन गायों का जन्म तिर्यक्-योनि में न होता, अतएव यदि इनके हृदय में लज्जा को भी स्थान मिल सकता, तो पर्वतराज हिमालय की परम सुन्दरी कन्या पार्वती के केशपाश देख कर ये अपने केश-सम्बन्धी सौन्दर्य्य के प्रेम को अवश्यही शिथिल कर देतीं। परन्तु निर्लज्ज होने के कारण, संभव है, वे अब तक भी अपने ही बालों को संसार में सब से अधिक सुन्दर समझ रही हों। यदि बात ऐसी हो तो इनकी ऐसी समझ सर्वथा भ्रमपूर्ण समझना चाहिए।

पार्वती के किस किस अङ्ग का वर्णन किया जाय। मैं तो उसे ब्रह्मा की कारीगरी का सब से अच्छा नमूना समझता हूँ। मेरा अनुमान तो यह कहता है कि एक विशेष कारण से ब्रह्मदेव ने ऐसे सर्वसुन्दर रूप का निर्माण किया। मालूम होता है, उसने सोचा कि चन्द्र और कमल आदि उपमा देने योग्य जितने सुन्दर सुन्दर पदार्थ संसार में हैं, सब को एकत्र करूँ; फिर उन्हें अपने अपने स्थान पर यथाक्रम रक्खूँ; तब देखूँ कि उन सब के एकत्र संयोग से सुन्दरता की कितनी वृद्धि होती है। पार्वती के रूप को इतना सुन्दर बनाने का यही कारण जान पड़ता है। इसी से उपमा देने योग्य सारे सुन्दर पदार्थों का सार लेकर उसने पार्वती को बनाया।

ऐसी यौवनवती और सुन्दरी पार्वती एक दफ़े अपने पिता

के पास बैठी थी कि इतने में सर्वत्र यथेच्छ विहार करने वाले नारदमुनि वहाँ आगये। उन्होंने पार्वती को देख कर उसके पिता हिमालय से कहा—तुम्हारी यह कन्या महादेव जी की पत्नी होगी। यह ऐसी सौभाग्यशालिनी होगी कि अपने प्रेमाधिक्य से अपने पति शङ्कर की अर्द्धाङ्गिनी बन जायगी। इसे कभी सपत्नी-सम्बन्धी दुःख न सहना पड़ेगा।

इसी से युवावस्था को प्राप्त होने पर भी पार्वती के विवाह का कुछ भी प्रबन्ध उसके पिता ने न किया। पार्वती के लिए महादेव जी से अच्छा और कौन वर मिल सकता था? अतएव हिमवान् ने अपने मन में सोचा कि जब इसके भाग्य में शङ्कर की पत्नी होना लिखा है तब और किसी वर की खोज करना वृथा है। मन्त्रों से पवित्र किये गये हव्य को परम तेजस्वी अग्नि के सिवा और कोई भी लेने का अधिकारी नहीं। यह सब ठीक है, परन्तु यहाँ पर यह बात पूछी जा सकती है कि कन्या इतनी सयानी हो जाने पर भी हिमालय ने महादेवजी से प्रार्थना क्यों न की कि कृपा करके आप पार्वती का पाणिग्रहण कर लीजिए। इसका उत्तर यह है कि स्वयं ही कन्या-सम्बन्धिनी याचना करना हिमालय ने उचित न समझा। उस ने कहा—प्रार्थना करने पर यदि महादेवजी मेरी बात न मानें तो मेरा अपमान होगा। इसी से वह इस सम्बन्ध में कुछ न कर सका। वह चुप ही रहा। ऐसे अवसर उपस्थित होने पर साधु-स्वभाव सज्जन इसी मार्ग का अवलम्बन करते हैं। वे ऐसा ही करते हैं जैसा हिमालय ने किया। इसके सिवा हिमालय के चुप रहने का एक कारण और भी था। अपने पिता दक्ष से क्रुद्ध होकर पूर्व-जन्म में सतीरूपिणी पार्वती ने जब से शरीर छोड़ा तब से महादेवजी दूसरा विवाह तो करना दूर रहा, सारे संसारी झंझटों को छोड कर विरक्त हो गये थे और विरक्तों

से विवाह की बात छेड़ना कभी युक्तिसङ्गत नहीं माना जा सकता।

इस घटना के कुछ काल उपरान्त महादेवजी इन्द्रियों के विकारों को जीत कर, चर्माम्बर धारण किये हुए, हिमालय के एक बहुत ऊँचे शिखर पर चले गये। इस शिखर के ऊपर गङ्गाजी बहती थीं। वहाँ देवदारु का घना वन भी था। गङ्गा के किनारे होने के कारण वह वन सदा हरा भरा रहता था। कस्तूरी-मृग वहाँ स्वच्छन्दता-पूर्वक घूमा करते थे। उनकी नाभियों से गिरी हुई कस्तूरी से वह सारा प्रदेश सुगन्धित था। कितने ही किन्नर भी उस शिखर पर रहते और अपने मधुर आलापों से उस स्थान की रमणीकता बढ़ाते थे। ऐसे शीतल, सुगन्धिपूर्ण और मनोहारी शिखर पर, तप करने के इरादे से, शङ्कर जी ने जाकर निवास किया।

शिवजी के साथ उनके भृङ्गी आदि गण भी उस पर्वत पर गये। वहाँ उन्होंने नागकेसर के फूलों और पत्तों को कानों पर खोंसा—उनके कुण्डल बना कर उन्होंने पहने। शरीर पर कोमल कोमल भोजपत्र के वस्त्र उन्होंने धारण किये। फिर मैनसिल और शिलाजीत से व्याप्त होने के कारण सुगन्धित शिलातलों पर वे लोग जा बैठे और मनमाना विहार करने लगे।

गण ही नहीं, शिवजी के साथ उनका वाहन नन्दी बैल भी वहाँ गया। जमी हुई बर्फ़ की शिलाओं को उसने अपने खुरों से खोदना और मदोन्मत्त होने के कारण गर्व से गम्भीर ध्वनि करना आरम्भ किया। उसे देख कर वहाँ के गवय नामक पहाड़ी पशु भयभीत हो उठे। उसकी तरफ़ आँख उठा कर देखना भी उनके लिए दुःखदायक हो गया। इस पर्वत पर शेर भी बहुत से थे जब कभी नन्दी को उनकी दहाड़ दूर से

सुनाई देती तब वह उसे असह्य हो उठती। उस समय वह भी बड़े ही उच्च-स्वर से डकारने लगता।

ऐसा मनोहर और एकान्तवर्ती स्थान पाकर शिवजी ने वहाँ तपस्या करने का निश्चय किया। उनकी आठ मूर्तियों में से एक मूर्ति अग्नि भी है। वहाँ पर उन्होंने अपनी उसी मूर्ति, अर्थात् अग्नि, की स्थापना की। फिर समिधा नाम की लकड़ियों से उसे उन्होंने ख़ूब ही प्रदीप्त किया। जितने प्रकार के तप हैं उनके फलों के दाता यद्यपि आप ही हैं तथापि किसी अनिर्वचनीय कामना की प्रेरणा से उन्होंने स्वयं ही, उस प्रदीप्त अग्नि को सामने रख कर, तपस्या आरम्भ की। कामना की अलौकिकता के विचार से उनका इस तरह तप करना अचम्भे की बात नहीं।

देवताओं से भी पूजा किये गये शिवजी की तपस्या का समाचार पा कर शैलाधिराज हिमालय को एक बात सूझी। उसने कहा—पार्वती की ओर शिवजी का ध्यान आकृष्ट करने का यह अच्छा अवसर है। अतएव उसने परम पूजनीय शिवजी की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए पार्वती को उनके पास भेजने का निश्चय किया। उसने अपनी प्यारी पुत्री पार्वती को बुला भेजा। फिर जया और विजया नाम की दो सखियों के साथ उसे शिवजी के समीप भेज दिया। उसने उस तपोभूमि में जाकर शिवजी से प्रार्थना की कि मैं पिता की आज्ञा से आपकी सेवा करने आई हूँ। कृपा करके मुझे आज्ञा दीजिए। स्त्रियों का सान्निध्य यद्यपि पूजा-पाठ, तपस्या और समाधि में कुछ न कुछ विघ्न अवश्य डालता है। पर यह बात साधारण जनों के लिए ही कही जा सकती है, शिवजी के लिए नहीं। इसी से पार्वती को विघ्नरूप समझ कर भी, उन्होंने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसे सेवा करने की आज्ञा दे दी।

सच तो यह है कि विकार-जनक बातें आँखों के सामने उपस्थित होने पर भी जिन महात्माओं का चित्त चञ्चल नहीं होता वही सच्चे धैर्य्यधारी और तपस्वी कहे जा सकते हैं।

सुन्दर केशों वाली पार्वती वहाँ अपनी सखियों के साथ सुख से रहने और शिवजी की सेवा करने लगी। वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठ कर पहले तो वेदी को झाड़कर स्वच्छ कर देती। फिर शिवजी के अनुष्ठान के लिए जल भर लाती। तदनन्तर वह पूजन के लिए अच्छे अच्छे फूल और कुश भी ले आती। इस तरह प्रति दिन वह बड़े ही भक्तिभाव से शिवजी की सेवा करती। इस सेवा-शुश्रूषा से उसे कुछ थकावट अवश्य आ जाती, परन्तु शिवजी के ललाटवर्ती चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से उसका वह सारा थकान और परिश्रम दूर हो जाता।

दूसरा सर्ग।

देवताओं का ब्रह्मा के पास जाना और वर पाना।

जिस समय की यह बात है उस समय तारक नाम का एक दैत्य देवताओं को बेहद कष्ट दे रहा था। उसने देवताओं का नाकों दम कर लिया था। जब वे बहुत ही तङ्ग हुए तब इन्द्र को अगुवा बना कर ब्रह्मा से अपनी कष्ट-कथा कहने के लिए ब्रह्मलोक को गये। जब वे ब्रह्मलोक में पहुँचे तब सब के मुख मलीन हो रहे थे। उन कुम्हलाये हुए मुखवाले देवताओं के आने का समाचार सुनकर ब्रह्माजी कृपा-पूर्वक उनके सामने आकर इस तरह प्रकट हुए जिस तरह मुँदे हुए कमलोंवाले सरोवरों के सामने प्रातःकाल सूर्य प्रकट होता है। सारे संसार को उत्पन्न करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा को सामने देख कर देवताओं ने उन्हें सादर प्रणाम किया। फिर वे सुन्दर और सार्थक शब्दों से उन वागीश ब्रह्मा की स्तुति करने लगे। वे बोले—

भगवन्, आपको नमस्कार। जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक मात्र आप ही विद्यमान थे। उस समय आप एक ही रूपवाले थे। सत्व, रज और तम—इन तीन गुणों का विभाग तो आपने

पीछे से किया। इसी विभाग के अनुसार ही आपको ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उपाधियों से युक्त, पृथक् पृथक् तीन रूप धारण करने पड़े। हे अज, जिस समय सर्वत्र जल ही जल था, पञ्च-महाभूतों की उत्पत्ति तक न हुई थी, उस समय आप ही ने अपने अमोघ वीर्य को उस सलिल-राशि में छोड़ा। उसी से इस चराचर विश्व की उत्पत्ति हुई। यही कारण है जो आप इस विश्व के उत्पादक कहे जाते हैं। मूल में यद्यपि आप अकेले ही हैं तथापि सृष्टि की उत्पत्ति, उसका पालन और उसका संहार करने के लिए आपने अपने ही मे तीन अवस्थाओं की कल्पना करके अपनी अनन्त महिमा का परिचय दिया है; और सृष्टि, स्थिति, प्रलय के भिन्न भिन्न तीनों काम ब्रह्मा, विष्णु और शिव होकर आपने ही अपने ऊपर लिये हैं। यथार्थ में तो आप अकेले ही हैं। निर्देश किये गये प्रयोजनों से ही आप एक के तीन हो गये हैं।

जब आपने सृष्टि-रचना की इच्छा की तब आपने अपने ही शरीर के दो भाग कर दिये। उनमें से एक भाग स्त्री और दूसरा पुरुष हुआ। आपके वही दोनों भाग संसार के माता-पिता हुए। इसे आप हमारा ही कथन न समझिए। प्राचीन से भी प्राचीन तत्त्वज्ञों ने यह बात स्वीकार की है। एक हज़ार चतुर्युगियों का तो आपने अपना दिन बनाया और इतनी ही चतुर्युगियों की अपनी एक रात बनाई। आप अपने निर्दिष्ट दिन में जब जागते रहते हैं तभी चराचर की सृष्टि होती है। जब तक आप जागे हैं तभी तक सृष्टि का अस्तित्व समझिए। जब आप की रात आती है और आप सो जाते हैं तब सृष्टि का संहार हो जाता है। इसी से आपका दिन ही सृष्टि और आप की रात ही पञ्चमहाभूतों की प्रलय है।

आपकी महिमा को तो देखिए। यह सारा संसार आप ही

से उत्पन्न होता है; परन्तु आप किसी से भी उत्पन्न नहीं होते। संसार की उत्पत्ति के कारण तो आप अवश्य हैं, परन्तु आपकी उत्पत्ति का कोई कारण नहीं। जगत् का नाश तो आप करते हैं, परन्तु आपका कभी नाश नहीं होता—यह जगत् तो सान्त है, परन्तु आप अनन्त हैं। जगत् के तो आदि आप अवश्य हैं; परन्तु स्वयं आदि-रहित अर्थात् अनादि हैं। इसके सिवा, जगत् के ईश्वर होकर भी आपका कोई ईश्वर नहीं। भगवन्, अपनी ही आत्मा से आप अपने को जानते हैं। आत्मज्ञान के लिए आपको और किसी वस्तु की सहायता अपेक्षित नहीं। अपने को आप उत्पन्न भी अपनी ही आत्मा से करते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु आप इतने समर्थ हैं कि आप स्वयं ही अपनी आत्मा में लीन भी हो जाते हैं। आपकी स्थिति और आपका लय, ये दोनों जिस तरह सर्वथा आप ही के हाथ में हैं उसी तरह आपके सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करना भी सर्वथा आप ही के अधीन है। और किसी को उसका ज्ञान होना सर्वथा असम्भव है।

नदियों और समुद्रों के समान तरलतापूर्ण भी आप ही हैं और बड़े बड़े पर्वतों के समान काठिन्य-पूर्ण भी आपही हैं। इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य घट-पटादि पदार्थों के समान स्थूल भी आप ही हैं और परमाणुओं के समान सूक्ष्म भी आप ही हैं। तृण और तूल के समान हलके भी आप ही हैं और हेमाद्रि के सदृश गुरु, अर्थात् भारी, भी आप ही हैं। कारणरूप भी आप ही हैं और कार्यरूप भी आप ही हैं। अणिमा आदि जितनी विभूतियाँ हैं वे सभी आपको प्राप्य हैं; जिसकी आप इच्छा करें वही हाथ जोड़ आपके सामने खड़ी हो जाय। जिनका उपोद्घात प्रणव है, जो उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित इन तीन स्वरों से उच्चारण की जाती हैं, जिनका

प्रतिपाद्य कर्म अनेक प्रकार के यज्ञ हैं, और जिनका चरम लक्ष्य स्वर्ग की प्राप्ति कराना है, उन वेद-वाणियों की उत्पत्ति के कारण आप ही हैं। वेद भगवान् आप ही की कृपा से प्राप्त हुए हैं। नाना प्रकार के भोग और अपवर्ग आदि पुरुषार्थों की प्राप्ति के मार्ग में प्रवृत्त कराने वाली सत्त्व-रजस्-तमोमयी त्रिगुणात्मिका प्रकृति आप ही हैं और बिना अंश भी उन पुरुषार्थों में लिप्त हुए, तटस्थ बन कर, उस प्रकृति के कार्यकलाप का तमाशा देखने वाले भी आप ही हैं। सांख्य-शास्त्र के ज्ञाता पण्डितों की यही सम्मति है और इसके यथार्थ होने में सन्देह भी नहीं। क्योंकि, आप संसार को तो अनेक सांसारिक कार्यों में लिप्त रखते हैं, परन्तु आप उन से अलिप्त ही रहते हैं।

अग्निष्वात्तादि पितरों के भी पिता और इन्द्र आदि देवताओं के भी देवता आप ही हैं, कोई और नहीं। यहाँ तक कि इन्द्रिय, अर्थ, मन, बुद्धि, आत्मा, महत्, व्यक्त और परम-पुरुष के भी आगे जो कुछ है, वह भी आप ही हैं। हव्य भी आप, यजमान भी आप, भोज्य-वस्तु भी आप और भोक्ता भी आप ही हैं। जो कुछ इस विश्व में ज्ञेय (जानने योग्य) है वह भी आपही हैं और उसके ज्ञाता भी आपही हैं। यही नहीं, किन्तु जिस परात्पर वस्तु का ध्यान किया जाता है वह और उसके ध्यानकर्ता भी आप ही हैं।

देवताओं के मुख से ऐसी यथार्थ और मनोहारिणी स्तुति सुन कर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। अतएव उन पर कृपा करने के इरादे से वे बोले। द्रव्य, गुण, क्रिया और जाति, इन चार भेदों के अनुसार भाषण-पद्धति, अर्थात् वाणी की प्रवृत्तियाँ, चार प्रकार की होती हैं—वैखरी, श्रुतिगोचरा, द्योतितार्था और सूक्ष्मा। इसी से शब्दों की प्रवृत्ति का नाम चतुष्टयी है। अतएव पुरातन कवि ब्रह्मा जी के चारों मुखों से निकलने के कारण

वाणी की चार प्रवृत्तियाँ, अर्थात् उनकी चतुष्टयी, सचमुच ही यथार्थ हो गई। उसके चारों प्रकार सफलता को प्राप्त हो गये।

ब्रह्माजी ने कहा—बड़ी बड़ी भुजाओं वाले हे परम पराक्रमी देववर्ग! मैं तुम्हारा सादर स्वागत करता हूं। तुम तो सब आज यहाँ एक ही साथ आकर उपस्थित हुए हो। कहो, कुशल तो है? तुम लोगों में से जिसका जैसा प्रभाव है तदनुसार ही उसे अधिकार भो दिया गया है। अपने अपने अधिकार के पद पर अधिष्ठित हो कर भी तुम्हारा एक ही साथ मिल कर आना बिना किसी विशेष कारण के नहीं हो सकता। तुम्हारे मुखों पर मलिनता छाई हुई है। उन पर प्रसन्नता की कुछ भी झलक नहीं। हिमपात से नक्षत्रों की ज्योति जैसे क्षीण हो जाती है वैसे ही तुम्हारे मुखों की शोभा भी क्षीण दिखाई देती है। कहिए, मामला क्या है?

पहले इन्द्र ही को देखो। उनके वज्र की धार कुण्ठित सी है। उससे न तो आग की चिनगारियाँ ही निकलती हैं और न उसके चारो ओर प्रभा-मण्डल ही दिखाई देता है। वरुण के पाश की भी बुरी दशा है। इस पाश को देखते ही शत्रुओं का दर्प चूर हो जाता रहा है। परन्तु इस समय वरुण के हाथ में वह इस प्रकार नष्ट-वीर्य सा दिखाई देता है जैसे गारुड़ीय मन्त्रों के प्रभाव से सर्प का वीर्य नष्ट हो जाता है। कुबेर ने तो अपने हाथ से गदा ही रख दी है। गदारहित उनके बाहु टूटी शाखा वाले वृक्ष की समता कर रहे हैं। यह दशा देख कर अनुमान होता है कि किसी ने उनका अवश्य ही पराभव किया है और इस पराभव से उन्हें ऐसा दुःख हुआ है जैसा कि कलेजे में चुभे हुए बाण से होता है। यमराज का भी हाल अच्छा नहीं। वे चुपचाप बैठे हुए अपने दण्ड से पृथ्वी पर रेखायें खींच रहे हैं। उनका यह दण्ड आज तक कभी निष्फल नहीं हुआ।

परन्तु, इसी अमोघ दण्ड से वे आज लोहे की एक साधारण शलाका या कुदाली का काम ले रहे हैं। भूमि खुरचने और खोदने का काम लोहे के छोटे मोटे औज़ारों ही से लिया जाता है, प्रभापूर्ण दण्ड से नहीं। मैं देखता हूँ कि यमराज का ऐसा दिव्य दण्ड इस समय बिलकुल ही द्युतिहीन हो रहा है। उसमें चमक का नाम तक नहीं। यह बड़े ही अपमान और लाघव की बात है।

इन दिक्पाल देवताओं की तरह औरों की अवस्था भी शोचनीय ही दिखाई देती है। देखिए, ये द्वादशादित्य हैं। परन्तु इनके प्रताप और तेज का कहीं पता नहीं। ये तो बिलकुल ही शीतल हो गये हैं। बेचारे चुपचाप चित्र लिखे से दिखाई देते हैं। जान पड़ता है कि इनका अस्तित्व अब केवल देखने ही के लिए है; और किसी काम के अब ये नहीं। उनचासों पवन भी बहुत व्याकुल जान पड़ते हैं। ऐसा मालूम होता है जैसे किसी ने उनके वेग का नाश कर दिया हो। जलों को भी देखिए; वे उलटे बह रहे हैं। इस से सूचित होता है कि उनके प्रवाह को किसी ने रोक दिया है। रुद्रों का भी कुछ हाल न पूछिए। जटाजूटों में धारण किये हुए चन्द्रमा की किरणों वाले उनके शीश ऊपर को उठते ही नहीं; वे नीचे ही को झुके हुए हैं। हुङ्कार का शब्द भी उनके मुखों से अब नहीं निकलता।

तुम लोगों की तो पहले बड़ी प्रतिष्ठा थी। तुम्हारे अधिकार बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। परन्तु आज तो कुछ और ही बात दिखाई देती है। कहो तो, हो क्या गया है! क्या कोई बहुत बड़े बलशाली शत्रुओं से सामना पड़ा है और क्या उन्होंने तुम्हारी मान-मर्यादा का उसी तरह उल्लंघन कर दिया है जिस तरह की सामान्य शास्त्रों के नियमों का उल्लंघन विशेष

आज्ञा, अर्थात् अपवादरूप नियमों, से किया जाता है ? बल, पौरुष और पराक्रम में क्या तुम से भी कोई बढ़ गया ? तुम्हारे इस प्रतिष्ठा-भङ्ग का कारण क्या ? बेटा, कहो तो किस लिए तुम सब मिल कर मेरे पास आये हो ? बोलो। मेरा काम तो केवल संसार की सृष्टि करना है। परन्तु उसकी रक्षा का भार तुम्हीं पर है। यदि तुम्हारे अधिकार छिन गये तो इस संसार की रक्षा फिर कैसे होगी ?

ब्रह्मा जी के मुख से निकली हुई ऐसी सहानुभूतिपूर्ण बातें सुन कर इन्द्र ने, मन्द मन्द चलने वाली वायु से हिलाये गये कमलों के समुदाय के सदृश शोभाधारी, अपने एक हज़ार नेत्रों से बृहस्पति की तरफ़ देखा। उसने आँखों द्वारा सुरगुरु बृहस्पति से यह इशारा किया कि आप ही अब हम लोगों के आने का कारण ब्रह्मदेव से निवेदन कीजिए। सुरगुरु ने इन्द्र की बात मान ली। इन्द्र के सदृश उनके यद्यपि हज़ार आँखें न थीं, दो ही थीं; तथापि प्रभाव में उनकी वे दो आँखें इन्द्र की एक हज़ार आँखों से भी अधिक महत्त्व रखती थीं। उन दो आँखों से बृहस्पतिजी वर्तमान काल ही की नहीं, भूत और भविष्यत् की भी घटनायें प्रत्यक्षवत् देख सकते थे। देवताओं के ऐसे सर्व-दर्शी गुरुवर बृहस्पति ने हाथ जोड़ कर ब्रह्मदेव से इस प्रकार देवताओं की दुर्दशा का वर्णन आरम्भ किया—

भगवन्, आपने बहुत ठीक कहा। आपका अनुमान सर्वथा सच है। हमारे सारे अधिकार शत्रुओं द्वारा छिन गये हैं। आप तो अन्तर्यामी और घट घट के वासी हैं। फिर भला, आपको हमारी दुर्गति का हाल क्यों न मालूम हो जाय ? भला, आप से भी कोई बात छिपी रह सकती है ? प्रभो, हम लोगों की विपदा का ठिकाना नहीं। तारक नाम के असुर ने आप से जो वर पाया था उसके प्रभाव से वह बहुत ही उद्दण्ड हो

गया है। धूमकेतु का उदय जिस तरह तीनों लोकों में नाना प्रकार के उपद्रवों का कारण होता है, वैसे ही यह उद्दण्ड दैत्य भी हम लोगों के त्रास और सन्ताप का कारण हो रहा है। हमारे लिए यह भी एक प्रकार का धूमकेतु ही है। इसके किये हुए अत्याचारों का वर्णन थोड़े में सुन लीजिए—

हम लोगों में सूर्य से अधिक तेजस्वी और कोई नहीं। परन्तु ऐसे ज्योतिष्मान् सूर्य को भी तारक की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी है। सूर्य को मनमाना प्रकाश करने की आज्ञा नहीं। तारक की राजधानी में उसे केवल इतना ही प्रकाश प्रकट करने की आज्ञा है जितने से उस दैत्य की विलास-वापियों (बावड़ियों) के कमल खिल उठें। चन्द्रमा का यह हाल है कि उसे अन्य लोक में चले जाने की अनुमति ही नहीं। तारक की आज्ञा से शुक्लपक्ष ही में नहीं, कृष्ण पक्ष में भी उसे उदित होना पड़ता है। फिर यही नहीं कि उसे क्रम क्रम से बढ़ा कर अपनी कलाओं को प्रकट करना पड़े। नहीं, उसे अपनी सभी कलाओं से एक ही साथ तारक की सेवा करनी पड़ती है। हाँ, इतनी रियायत वह अवश्य करता है कि चन्द्रमा की जो कला शिवजी के जटाजूट में है उसे वह नहीं छीनता। तारक के डर से बेचारे चन्द्रमा को सदा ही पूर्णिमा की चाँदनी की छटा छिटका कर उसके नगर की शोभा बढ़ानी पड़ती है।

पवन की दुर्गति का हाल भी कुछ न पूछिए। मारे डर के वह पुष्पवाटिकाओं के पास तक नहीं जा सकता। उसे सदा ही यह भय लगा रहता है कि यदि मैं भूल से भी वहाँ गया और मेरे चलने से दो चार फूल डालियों से गिर पड़े या कहीं उड़ गये तो यह दैत्य मुझ पर चोरी का इलज़ाम लगा कर ज़रूर ही मुझे दण्ड देगा। इससे वह वाटिकाओं की तरफ़ कभी जाता ही नहीं। हाँ, उस अत्याचारी दैत्य के पास उसे

ज़रूर जाना पड़ता है । सो अपने मतलब से नहीं, उसकी सेवा करने के लिए । जब तक वह उसके पास रहता है तब तक बहुत सँभल कर उसे रहना पड़ता है । ताड़ का पङ्खा हिलने से वायु का जितना सञ्चार होता है बस उतना ही वह उसके पास चलता है । तारक पर पङ्खा किये जाने की अब ज़रूरत नहीं । पङ्खे का काम अब पवन-देवता ही के सुपुर्द है । ऋतुओं का यह हाल है कि अब वे अपने निर्दिष्ट क्रम से प्रकट नहीं हो सकते । ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, शिशिर और हेमन्त का क्रम जाता रहा । अब इन सब ऋतुओं को वसन्त बन कर तारक के लिए सैकड़ों तरह के फूल देने पड़ते हैं । वे सब अब उसके माली बन रहे हैं । संसार की सेवा से अब उन का कोई सरोकार नहीं रहा ।

बेचारा रत्नाकर समुद्र भी तारक के कारण पीड़ित है । तारक के पास उसे रत्नों की भेंट सदा ही भेजनी पड़ती है । फिर भी उन अमूल्य रत्नों की बड़ी बड़ी राशियों को भी वह कुछ नहीं समझता । "और लाओ, और लाओ"—कह कर समुद्र को वह धमकाया ही करता है । इस कारण समुद्र की जान आफ़त में है । वह जलसमूह के भीतर बैठा हुआ दिन रात इसी फ़िक्र में रहता है कि कब और रत्न तैयार हों और कब मैं उनको लेकर तारक की भेंट करूँ । बात यह है कि रत्न एक ही दिन में तो ढेर हो नहीं जाते; वे तो धीरे धीरे बनते हैं । परन्तु तारक इस उज़्र को बहाना समझता है । वासुकि आदिक बड़े बड़े नागों के मस्तकों की देदीप्यमान मणियों से वह दुष्ट दैत्य दीपक का काम लेता है । इन सर्पों को उसने आज्ञा दे रक्खी है कि तुम मेरे ही महलों में उपस्थित रहा करो और रात को अपनी मणियाँ जगह जगह रख दिया करो । और तरह के दीपकों के बुझ जाने का डर रहता है । तुम्हारे शीश

की मणियाँ बुझती नहीं। इससे मैं उन्हीं से दीपक का काम लूँगा। इस आज्ञा के वशवर्ती होकर सारे सर्पराज सदा उसके महलों में उपस्थित रहते हैं और उसकी सेवा करते हैं। वे तो वहीं, प्रत्यक्ष इन्द्र को भी तारक की सेवा करनी पड़ती है। महेन्द्र भी उसकी कृपा के भिखारी हो रहे हैं। उसे प्रसन्न रखने के लिए कल्पवृक्ष के सुन्दर सुन्दर फूलों के हार और गजरे तैयार करा कर रोज़ ही उन्हें अपने कर्मचारियों के हाथ उसके पास भेजना पड़ता है। भगवन्, इतना करने पर भी वह प्रसन्न नहीं होता। हम सभी यथाशक्ति उसकी आराधना और सेवा-शुश्रूषा करते हैं। तिस पर भी वह अत्याचार और उत्पीड़न नहीं छोड़ता। उसके कारण तीनों लोकों में हाहाकार मचा रहता है। उससे सभी को क्लेश मिलता है। बात यह है कि दुश्शील और दुर्जन उपकार करने से शान्त नहीं होता। यदि उसका अपकार किया जाता है—यदि उसके दुष्कृत्यों का यथेष्ट बदला दिया जाता है—तभी वह शान्त होता है। अन्यथा उस के अत्याचार बन्द नहीं होते। यथेष्ट दण्ड देना ही उसकी दुष्टता का एक मात्र इलाज है।

हम लोग उस दुष्ट दैत्य की किन किन दुष्टताओं का वर्णन करें। जिस नन्दन-वन के परमोत्तम पुष्प देवाङ्गनायें भी अपने सुकुमार हाथों से धीरे धीरे तोड़ती रही हैं उन्हीं पर उसकी आज्ञा से अब कुल्हाड़ी चलती है। उनके पत्ते और टहनियाँ ही नहीं, डालें तक काट डाली जाती हैं। यहाँ तक कि समूचे पेड़ भी कभी कभी जड़ से काट गिराये जाते हैं।

सहस्रों सुरनारियों को उसने क़ैद कर रक्खा है। जब वह सोता है तब क़ैद की हुई वही सुराङ्गनायें उस पर चमर चलाती हैं। उनके लिए यह आज्ञा है कि चमर इस तरह चलाओ जिसमें केवल इतनी ही हवा चले जितनी कि साँस चलती

है। उन बेचारियों को यह सब अपमान सहना पड़ता है। वे रोती जाती हैं और चमर चलाती जाती हैं। उनकी आँखों से गिरे हुए आँसुओं से चमर भीग जाते हैं। आँसुओं से भीगे हुए चमरों के जल के जो कण बरसते हैं वे यद्यपि कभी कभी तारक के ऊपर भी पड़ जाते हैं तथापि उसे दया नहीं आती।

सूर्य के घोड़ों के खुरों से खुदे हुए सुमेरु-पर्वत के शिखर अब अपनी जगह पर नहीं। उन्हें उखाड़ कर तारक ने अपने महलों में रख दिया है। वहाँ वे उसके क्रीडा-शैल हो रहे हैं। भगवती मन्दाकिनी का भी बुरा हाल है। स्नान करने वाले दिग्गजों के मद से मैला हुआ जल मात्र अब उसमें शेष है। आप कहेंगे कि उसके स्वर्ण-कमल कहाँ गये? भगवन्, अब उसमें स्वर्ण-कमल कहाँ? वह तो अब सूनी पड़ी है। स्वर्ण-कमल तो उखाड़ कर तारक ने अपनी बावड़ियों में लगा लिये हैं।

उस दैत्य के डर से देवता लोग किसी भी भुवन की सैर नहीं कर सकते। वे अब अपने अपने घरों ही में घुसे पड़े रहते हैं। जिन मार्गों से उनके विमान चलते थे वे अब सूने पड़े हैं। देवताओं को दिन रात यह डर लगा रहता है कि कहीं वह रास्ते में मिल न जाय। इससे वे अब बिलकुल ही बाहर नहीं निकलते। निर्विघ्नता-पूर्वक यज्ञों का होना भी अब सम्भव नहीं। यज्ञ करने वाले लोग बड़े बड़े यज्ञों में जो हव्य हमें देते हैं उसे वह मायावी दैत्य हमारी आँखों के सामने ही अग्नि के मुख से छीन ले जाता है। इस कारण हमें अब भूखों मरने की भी नौबत आई है। हम अपनी किन किन व्यथाओं का वर्णन करें। इन्द्र के उच्चैःश्रवा नामक अश्वरत्न को भी वह बलपूर्वक छीन ले गया है। वह अश्व क्या था, चिरकाल से सञ्चय किये गये इन्द्र के मूर्तिमान् यश के सदृश था। सो इन्द्र को उससे भी हाथ धोना पड़ा है।

हम लोगों ने इस क्रूर और घातक दैत्य को मार्ग पर लाने और इसे अपने वश में करने के लिए बहुत उपाय किये। परन्तु सन्निपात हो जाने पर जैसे उत्तम से भी उत्तम ओषधियाँ निष्फल हो जाती हैं वैसे ही इस विषय में हमारी सारी चेष्टायें व्यर्थ हो गईं। इस सम्बन्ध में हमें विष्णु से बहुत कुछ आशा थी। इस आशा का कारण उनका सुदर्शन चक्र था। हमने समझा था कि चलाये जाने पर यह चक्र अवश्य ही इस पापी का कण्ठ काट देगा। परन्तु जब वह चलाया गया तब तारक के कण्ठ से टक्कर खाकर उससे बेतरह चिनगारियाँ तो निकलीं; पर और कुछ न हुआ। कण्ठ काट देना तो दूर रहा वह चक्र वहाँ पर कुछ देर वैसे ही चिपक रहा और तारक के कण्ठ का आभूषण सा बन गया।

इस दैत्य के हाथियों ने ऐरावत को तो जीत ही लिया था। अब वे इतने मदोन्मत्त हो उठे हैं कि पुष्करावर्त आदि मेघों पर टक्करें मारा करते हैं। उनके लिए यह एक प्रकार का खेल सा हो गया है। हमारी इस क्लेश-कथा को सुनकर आप को यह बात अच्छी तरह ज्ञात होगई होगी कि हम सब पर इस समय कैसी बीतती है। तारक के दिये हुए कष्टों से छुटकारा पाने के लिए हमने एक उपाय सोचा है। प्रभो! हम यह चाहते हैं कि एक बहुत बड़ी सेना लेकर उस पर चढ़ाई करें और समर में उसे सदा के लिए सुला दें। परन्तु हमारे पास बहुत बड़ी सेना के सञ्चालन योग्य कोई अच्छा सेनापति नहीं। ऐसे सेनापति की सृष्टि आपही करें तो हम लोगों की लाज रहे। जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए कर्म-बन्धनों का छेदन करने वाले धर्म की इच्छा जिस प्रकार मुमुक्षु जन करते हैं उसी प्रकार उस दुर्धर्ष दैत्य से छुटकारा पाने के लिए हम एक परम पराक्रमी सेनानायक पाने की

छा करते हैं। हम पर दया करके आप हमारी इस इच्छा के र्ण कर दीजिए। आपकी कृपा से यदि ऐसा सेनानायक मिल गया तो सुरेन्द्र उसे अगुआ बना कर तारक पर चढ़ाई गे और क़ैद की गई सुराङ्गनाओं के समूह के सदृश विजय-श्री को वे अपने शत्रुओं से छीन लाने में समर्थ होंगे।

इस प्रकार प्रार्थना करके बृहस्पति जी जब चुप हो गये तब ब्रह्मा जी बोले। मेघगर्जना के अनन्तर वृष्टि से लोगों को जितना आनन्द होता है उससे भी अधिक आनन्द उस समय ब्रह्मदेव के मुख से निकली हुई वाणी से देवताओं को हुआ। चतुर्मुख ब्रह्मा ने कहा—

तुम्हारा कार्य सफल तो अवश्य ही होगा, परन्तु उसकी सफलता के लिए कुछ समय तक तुम्हें ठहरना पड़ेगा। एक बात अवश्य है। वह यह कि तुम्हारी इच्छा-पूर्ति के लिए मैं स्वयमेव कुछ न करूंगा। जैसा सेनाधीश तुम चाहते हो वैसा सेनाधीश मैं स्वयं ही नहीं उत्पन्न करना चाहता। बात यह है कि तारक को जो बल, पराक्रम और ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है वह सब मेरी ही बदौलत प्राप्त हुआ है। उसके सौभाग्य और सुप्रताप का कारण मेरा ही वर-प्रदान है। अब मैं ही उसके नाश का उपाय करूं, यह सर्वथा अन्याय्य और अनुचित होगा। यदि कोई विष का पेड़ भी लगा कर बड़ा करे तो अपने ही हाथ से वह उसे काटना कदापि पसन्द न करेगा। इस दैत्य ने बड़ा ही अलौकिक तप किया। उस तपश्चर्या के प्रभाव से त्रिलोक के भस्म होने के लक्षण मुझे दिखाई देने लगे। तब मैंने अपने वर-प्रदानरूपी जल से उसे किसी तरह शान्त किया। उसने मुझसे यह वर माँगा कि देवताओं में से कोई भी मुझे न मार सके। पूर्वोक्त कारण से मुझे उसकी इच्छा पूर्ण करनी पड़ी। मैंने उसे मुँहमाँगा वर दे दिया। इसी से वह अत्यन्त

रणदुर्मद हो गया है और इसीसे युद्ध के मैदान में तुममें से कोई उसका सामना नहीं कर सकता। तुम क्या, भगवान् शङ्कर के वीर्यांश से उत्पन्न हुए पुरुष को छोड़ कर और किसी में उसका सामना करने और उसे मारने की शक्ति का होना सम्भव नहीं। भगवान् शङ्कर ज्योतिःस्वरूप, पूर्ण परमात्मा हैं। वे तमोगुण से सर्वथा दूर हैं; उसका उनमें लेश तक नहीं। उनकी महिमा और उनका प्रभाव अच्छी तरह जान लेने की शक्ति न मुझमें है और न विष्णु ही में है। अतएव परमैश्वर्य-शाली परमात्मरूप परमेश्वर ही तुम्हारी सेना का सञ्चालन करने योग्य पराक्रमी सेनापति उत्पन्न कर सकते हैं। और किसी में यह सामर्थ्य नहीं।

अच्छा, तो तुम लोग अब एक काम करो। महादेवजी इस समय समाधिस्थ होकर तपश्चर्या कर रहे हैं। उनको उस तप-श्चर्या से विरत करने की आवश्यकता है। तपस्या से महादेवजी के मन को तुम शैलराज हिमालय की कन्या उमा के सौन्दर्य द्वारा इस तरह खींचने की चेष्टा करो जिस तरह कि चुम्बक पत्थर के द्वारा लोहे का टुकड़ा खींचा जाता है। यदि किसी तरह उनकी समाधि छूट जाय और वे उमा के साथ विवाह करलें तो तुम्हारा काम बन जाय। शङ्कर की आठ मूर्तियों में से एक मूर्ति जल भी है। जिस तरह एक मात्र वह जल मेरा तेज सह लेने की शक्ति रखता है उसी तरह एक मात्र उमा भी महादेवजी का तेज सह लेने की शक्ति रखती है। उसके सिवा और किसी स्त्री में यह शक्ति नहीं। इसी से मैंने यह प्रस्ताव किया; यदि यह बात न होती तो मैं तुम्हारी कार्यसिद्धि के लिए किसी और ही उपाय की योजना करता। परन्तु और किसी उपाय से प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो सकती। सर्वसमर्थ शङ्कर का पुत्र तुम्हारा सेनापति होकर अपने शौर्य और बलविक्रम से बन्दी

बनाई गई सुरनारियों की वेणियाँ अवश्य ही खोलेगा । त्रैलोक्य का उत्पीड़न करने वाले उद्दण्ड दैत्य को मार कर वह देवाङ्गनाओं को छुड़ा लावेगा और साथ ही तुम्हारे सारे दुःखों और कष्टों को भी दूर कर देगा ।

देवताओं से यह कह कर ब्रह्माजी तो वहाँ के वहीं अन्तर्धान हो गये । इधर देवता भी ब्रह्मदेव के बताये हुए कर्तव्य पर विचार करते हुए देवलोक को लौट गये ।

अमरावती में पहुँच कर इन्द्र ने सोचा कि शैलकिशोरी उमा में शङ्कर का अनुराग उत्पन्न करने के लिए बिना पञ्च-शायक की सहायता के कार्य्यसिद्धि न होगी । यह काम ही ऐसा है कि वही इसे कर सकेगा, और कोई नहीं । अतएव इस गौरव-पूर्ण कार्य की बहुत ही शीघ्र सिद्धि के इरादे से उसने उस देवता का मन ही मन तत्काल ही स्मरण किया । स्मरण करते ही वह हाथ जोड़े हुए इन्द्र के सन्मुख आकर उपस्थित होगया । वह अकेला ही न आया; अपने सदा के साथी वसन्त को भी साथ लेता आया ।

उस समय कुसुमायुध काम और उसके सखा वसन्त का रूप देखने ही योग्य था । आम के फूले हुए फूल ही कुसुमायुध के अस्त्र हैं । उन अस्त्रों को तो उसने वसन्त के हाथ में दे दिया था । क्योंकि वे उसी की कृपा से उसे प्राप्त हुए थे । पर अपने त्रैलोक्यविजयी धनुष को उसने अपने ही पास रक्खा था । वह उसके कण्ठ से लटक रहा था—उस कण्ठ से जिस पर उसकी प्रियतमा रति के कर-कङ्कणों के चिन्ह दिखाई दे रहे थे । यह धनुष भी उसका बड़ा विलक्षण था । इसकी कोटियाँ सौन्दर्यवती नारियों की भ्रूलता के समान सुन्दर थीं ।

बनाई गई सुरनारियों की वेणियाँ अवश्य ही खोलेगा। त्रैलोक्य का उत्पीड़न करने वाले उद्दण्ड दैत्य को मार कर वह देवाङ्गनाओं को छुड़ा लावेगा और साथ ही तुम्हारे सारे दुःखों और कष्टों को भी दूर कर देगा।

देवताओं से यह कह कर ब्रह्माजी तो वहाँ के वहीं अन्तर्धान हो गये। इधर देवता भी ब्रह्मदेव के बताये हुए कर्तव्य पर विचार करते हुए देवलोक को लौट गये।

अमरावती में पहुँच कर इन्द्र ने सोचा कि शैलकिशोरी उमा में शङ्कर का अनुराग उत्पन्न करने के लिए बिना पञ्चशायक की सहायता के कार्य्यसिद्धि न होगी। यह काम ही ऐसा है कि वही इसे कर सकेगा, और कोई नहीं। अतएव इस गौरव-पूर्ण कार्य की बहुत ही शीघ्र सिद्धि के इरादे से उसने उस देवता का मन ही मन तत्काल ही स्मरण किया। स्मरण करते ही वह हाथ जोड़े हुए इन्द्र के सन्मुख आकर उपस्थित होगया। वह अकेला ही न आया; अपने सदा के साथी वसन्त को भी साथ लेता आया।

उस समय कुसुमायुध काम और उसके सखा वसन्त का रूप देखने ही योग्य था। आम के फूले हुए फूल ही कुसुमायुध के अस्त्र हैं। उन अस्त्रों को तो उसने वसन्त के हाथ में दे दिया था। क्योंकि वे उसी की कृपा से उसे प्राप्त हुए थे। पर अपने त्रैलोक्यविजयी धनुष को उसने अपने ही पास रक्खा था। वह उसके कण्ठ से लटक रहा था—उस कण्ठ से जिस पर उसकी प्रियतमा रति के कर-कङ्कणों के चिन्ह दिखाई दे रहे थे। यह धनुष भी उसका बड़ा विलक्षण था। इसकी कोटियाँ सौन्दर्य्यवती नारियों की भ्रूलता के समान सुन्दर थीं।

तीसरा सर्ग ।

मदन-दहन ।

दन महोदय को सामने खड़ा देख इन्द्र ने सभा में बैठे हुए सारे देवताओं के ऊपर से अपनी दृष्टि खींच ली। उसने उनकी तरफ़ देखना बन्द कर दिया। अपनी एक हज़ार आँखें उसने एक ही साथ मदन की ओर फेर दीं। सहस्र के दृष्टि-समूह से वह बड़े चाव से उसे ही । बात यह है कि आश्रित जनों पर स्वामी के द्वारा गया आदर-सत्कार प्रयोजन के अनुसार घटा बढ़ा जिससे कुछ विशेष काम निकलने की सम्भावना का तो वे अधिक आदर करते हैं, औरों का उतना ।

उसके बैठने के लिए, ठीक अपने सिंहासन ही के न दिया। फिर बड़े आदर से उसने कहा—"आइए, ाशय ! यहाँ बैठ जाइए"। यह सुन कर, मस्तक सने अपने स्वामी इन्द्र की इस कृपा का अभिनन्दन र वह इन्द्र के द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गया और निवेदन करना आरम्भ किया—

ज ! आप तो दूसरों के मन की बात बिना कहे ही हैं। अतएव मेरे लिए आपके सामने कुछ कहने वेशेष आवश्यकता नहीं। तथापि मैं जो कुछ कहता कारण मेरी धृष्टता ही समझ कर मुझे क्षमा कीजि-

पगा । कहिए, मेरे लिए क्या आज्ञा है ? मैं आज्ञा-पालन के लिए तैयार हूँ । मेरा स्मरण करके आपने मुझ पर जो अनुग्रह किया है उस उतने अनुग्रह से मुझे सन्तोष नहीं । कुछ आज्ञा भी दीजिए । मुझ से कोई काम लेकर अपने इस अनुग्रह को और अधिक कर दीजिए तो मैं अवश्य अपने को कृतार्थ समझूँगा । क्या किसी ने बहुत ही घोर तपश्चर्या करके आप का सिंहासन छीनना चाहा है ? क्या आप का पराजय करके वही हम लोगों का राजा होना चाहता है ? यदि किसी अविवेकी ने इस प्रकार आप से ईर्ष्या की हो तो मुझे आप उसका नाम भर बता दीजिए । मैं अपने चढ़े हुए बाण वाले इस धन्वा की एक ही टङ्कार से उसे अपना आज्ञाकारी बना लूँगा । इससे छूटे हुए एक ही बाण से उसके होश ठिकाने आ जायँगे और उसका सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा ।

जन्म-मरण से उत्पन्न होने वाले क्लेशों से भयभीत होकर, क्या कोई आप की इच्छा के विरुद्ध, मोक्ष-प्राप्ति के लिए तो नहीं प्रयत्न कर रहा ? यदि यही बात हो तो आप को ज़रा भी चिन्ता न करनी चाहिए । सुन्दरी नारियों की विलास-पूर्ण भ्रुकुटियोंवाले कुटिल कटाक्षों से मैं उसे इस तरह बाँध डालूँगा कि फिर उसमें उठने की भी शक्ति न रह जायगी । एक क्षण में वह अपनी सारी पूजा-पाठ भूल जायगा । यह तो मोक्ष-साधकों के सम्बन्ध में मेरा निवेदन हुआ । अर्थ और धर्म की साधना करने वालों को भी उनके साधन से परिच्युत करने की पर्याप्त शक्ति मुझ में है । और की तो बात ही नहीं, प्रत्यक्ष शुक्राचार्य से भी नीति का अध्ययन किया हुआ यदि आप का कोई शत्रु हो तो मैं उसके भी धर्म और अर्थ, दोनों, को इस तरह पीड़ित करके छोड़ूँगा जिस तरह कि जल का वेगवान् प्रवाह नदी के दोनों तटों को पीड़ित करके उन्हें गिरा देता है ।

किसी चारुरूपिणी पतिव्रता पर तो आपका मन नहीं गया ? यदि ऐसी बात हो तो आपके मनोभिलाष की पूर्ति में कुछ भी देरी न लगेगी। मैं ऐसी चेष्टा करूंगा कि वह सारा सङ्कोच छोड़ कर स्वयं ही अपनी बाहुलता को आप के कण्ठ में डाल देगी। अथवा, किसी और जगह आपके रममाण होने के कारण आपकी कोई प्रियतमा आप पर रुष्ट तो नहीं हो गई, और, उसके पैरों पर मस्तक रखने पर भी, प्रसन्न हो जाने के बदले कहीं उसने आप का तिरस्कार तो नहीं किया ? ऐसी कोपनशीला कामिनी के शरीर में मैं ऐसा सन्ताप उत्पन्न कर सकता हूं कि उसे फूलों और पत्तों से सजाई गई शय्या की शरण लेनी पड़े।

हे वीर ! आप प्रसन्न हो जाइए। इस सेवक के रहते आप को अपने वज्र से काम न लेना पड़ेगा। उसे आप आराम करने दीजिए। आपके सारे काम मेरे इन शरों ही से हो जायंगे। आप बता भर दीजिए कि दैत्यों और दानवादिकों में कौन आप से शत्रुता कर रहा है। मैं अपने अमोघ अस्त्रों से उसका सारा बाहुवीर्य विफल कर दूँगा। उसकी सारी वीरता रक्खी रहेगी। कोप से फड़कते हुए अधरों वाली स्त्रियों से भी उस बेचारे को भयभीत होना पड़ेगा। वीरों की योजना करने की आवश्यकता ही न पड़ेगी।

महाराज ! जो कुछ मैंने आपके सम्मुख निवेदन किया उसमें मेरी बहादुरी कुछ भी नहीं। मुझे जो कुछ शक्ति प्राप्त है वह आप ही की कृपा का फल है। मैं यद्यपि कुसुमायुध ही हूं—मेरे शस्त्रास्त्र यद्यपि लोहे के नहीं, सुकुमार सुमनों ही के हैं—तथापि आपके प्रसाद से मैं पिनाकपाणि महादेव की भी धैर्य्यच्युति कर सकता हूं। और धनुषधारियों की तो बात ही नहीं; उन्हें तो मैं बहुत ही तुच्छ वस्तु समझता हूँ। पिनाक

नामक धनुष धारण करने वाले महादेव जी का भी धैर्य्य छुड़ाने के लिए मुझे न सेना की आवश्यकता है न और किसी प्रकार की सहायता की। अपने साथी अकेले वसन्त ही की सहायता से यह काम मैं कर सकता हूं।

जिस समय पञ्चायुध इस प्रकार अपने सामर्थ्य का वर्णन कर रहा था उस समय इन्द्र अपने सिंहासन पर पालथी लगाये हुए बैठा था। परन्तु जब मनोज ने महादेव जी की धैर्यच्युति कर सकने की बात कही तब जाँघ के ऊपर से अपना एक पैर उतार कर इन्द्र अच्छी तरह सँभल कर बैठ गया। पैर उठाने में नखों की आभा पैर रखने की चौकी पर जो पड़ी तो उसकी शोभा और भी बढ़ गई। इन्द्र तो यही चाहता ही था। शङ्कर की समाधि छुड़ाने का प्रयत्न करने ही के लिए तो उसने रति-नायक का आह्वान किया था। जब उसने इन्द्र के मन की बात आपही कह सुनाई तब इन्द्र के आनन्द की सीमा न रही। वह सँभल कर बैठ गया और पञ्चवाण की इस प्रकार बड़ाई करने लगा—

सखे! शाबाश! क्यों न हो। आप से मुझे ऐसी ही आशा थी। आप क्या नहीं कर सकते? मेरे दो ही तो अस्त्र हैं—एक मेरा यह कुलिश और दूसरे आप। परन्तु वज्र में एक बहुत बड़ी न्यूनता है। तपोबली महात्माओं पर उसकी कुछ भी नहीं चलती। उनको वशीभूत करना उसके सामर्थ्य के बाहर है। परन्तु आपकी गति सभी कहीं है। तपस्वियों तक को आप अपने वश में कर सकते हैं; वे भी आपकी मार से नहीं बच सकते। मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ। मुझसे आप का बल-विक्रम छिपा नहीं। इसी से मैं आपको एक बहुत बड़े कार्य-साधन के लिए नियुक्त करना चाहता हूँ। यह काम आप ही के करने योग्य है और किसी के नहीं। भगवान् विष्णु ने

जब यह देख लिया कि शेष इस इतनी बड़ी पृथ्वी को अपने शीश पर धारण कर सकता है तभी उन्होंने उसकी योजना अपने शरीर-धारण के लिए की। यदि उन्हें शेष की योग्यता न ज्ञात हो गई होती तो वे उससे कभी शय्या का काम न लेते। ठीक यही बात आपकी योग्यता की भी है। आपकी योग्यता देख कर ही मैं आपकी योजना एक गुरुतर कार्य्य के साधन के लिए करना चाहता हूँ। आपने जो यह कहा कि महादेव जी पर भी आपके बाण चल सकते हैं—आप उनका भी धैर्य छुड़ा सकते हैं—इससे तो आपने मेरा काम स्वीकार ही सा कर लिया। इतना कहने से तो आपने मेरे मनोऽभिलाष की पूर्ति ही सी कर दी: बात यह है कि इस समय बड़े बली दैत्य देवताओं के शत्रु हो रहे हैं। उनके कारण देवता बेहद तङ्ग हैं। अतएव देवताओं की यह इच्छा है कि आप महादेवजी की समाधि छुड़ाने में सहायक हों। देवता चाहते हैं कि महादेव जी के तेज से यदि एक पुत्र उत्पन्न हो तो उसी को वे अपना सेनापति बना कर अपने शत्रुओं का पराजय करें। परन्तु महादेवजी का इस समय यह हाल है कि वे मन्त्र-न्यासपूर्वक ब्रह्म-ध्यान में निमग्न हो रहे हैं। उन्होंने अखण्ड समाधि लगा दी है। ऐसी समाधि से उन्हें जगाना आपके लिए कुछ भी कठिन नहीं। यह इतना दुस्साध्य काम आपके एक ही बाण से सिद्ध हो सकता है। आप कृपा करके समाधिस्थ शङ्कर को जगा कर ऐसा प्रयत्न कीजिए कि शैलनन्दिनी पार्वती पर वे अनुरक्त हो जायँ। ब्रह्माजी ने बताया है कि पार्वती को छोड़ कर त्रैलोक्य में और कोई स्त्री उनके तेज को नहीं सह सकती। दैवयोग से गिरीन्द्र-नन्दिनी पार्वती भी, अपने पिता की आज्ञा से, इस समय उसी पर्वत-शिखर पर पहुँच गई है जिस पर महादेव जी तपस्या कर रहे हैं। वह वहीं रहती है और उनकी सेवा करती है। यह

नाम मैंने अप्सराओं के मुह से सुना है । ये अप्सरायें ही मेरे लिए दूत का काम करती हैं । येही मेरे गूढ़ चर हैं । इन्हीं से मुझे औरों की गुप्त से भी गुप्त बातें मालूम हो जाती हैं ।

बहुत अच्छा, तो अब आप देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए प्रस्थान कीजिए । देर न लगाइए । "मङ्गलमस्तु" । इस महान् कार्य की सिद्धि की प्रधान साधक तो गिरिराजनन्दिनी पार्वती ही है, तथापि आपकी सहायता की भी परमावश्यकता है। उस सिद्धि की प्राप्ति के लिए आप चरम कारण के समान हैं । अङ्कुर की उत्पत्ति का कारण यद्यपि बीज ही माना जा सकता है, तथापि उसके उद्गम के लिए जलरूपी अन्तिम कारण की भी अवश्य ही अपेक्षा होती है । देवताओं के कार्य-रूप अङ्कुर के उद्गम के लिए उमा बीज के सदृश है और आप जल के सदृश । इसी से आपकी सहायता की इतनी आवश्यकता है ।

देवता जो असुरों पर विजय-प्राप्ति करना चाहते हैं उस विजय का एक मात्र उपाय शिवजी को पार्वती पर अनुरक्त करना है । और, पार्वती पर उन्हें अनुरक्त करने की शक्ति एक मात्र आप के अस्त्रों में है । क्योंकि शिवजी पर आप ही का अस्त्र चल सकता है । अतएव आप धन्य हैं । औरों से न हो सकने योग्य छोटा मोटा काम करने वाले भी बहुत बड़े यश के पात्र समझे जाते हैं । परन्तु जिस काम पर आप की योजना की जाती है वह दूसरों से हो भी नहीं सकता और काम भी बहुत बड़े महत्त्व का है । उसका सम्पादन करने से आप को जो यश मिलेगा उसकी तो इयत्ता ही नहीं । देखिए, बड़े बड़े देवता तो आप के याचक हो रहे हैं । और, उनकी याचना भी ऐसे काम के विषय में है जिस से एक दो का नहीं, किन्तु तीनों लोकों का भला हो सकता है । यदि कोई और इस काम के

योग्य समझा जाता तो उसे न मालूम कितनी हिंसा करनी पड़ती; कितना रुधिर बहाना पड़ता। परन्तु आपके धनुर्बाण में ऐसी अलौकिक शक्ति है कि उस से रुधिर का तो एक बूंद भी नहीं गिरता, पर काम बड़े बड़े होजाते हैं। बड़े बड़े रथियों, महारथियों और महात्माओं को भी आप से हार माननी पड़ती है। आप के ऐसे अद्भुत शौर्य, वीर्य और पराक्रम की मुझ से पर्याप्त प्रशंसा नहीं हो सकती। अतएव पधारिए, देवकार्य कीजिए, यशस्वी हूजिए।

हे मन्मथ! आपका सखा यह वसन्त भी इस काम में आप की अवश्य ही सहायता करेगा। यह कभी आप से जुदा नहीं होता; सदा साथ ही रहता है। अतएव इस काम में भी यह आपका अवश्य ही सहायक होगा। सहायता करने के लिए इससे कुछ कहना मैं व्यर्थ समझता हूं। पवन सदा ही अग्नि की सहायता करता है। बिना किसी की प्रेरणा अथवा आज्ञा ही के वह उसे प्रदीप्त किया करता है। ऐसा करने के लिए कभी कभी किसी को उससे प्रार्थना करनी पड़ती है?

अमरेन्द्र के इस अनुशासन को रति-नायक ने सिर झुकाकर खुशी से मान लिया। उसे उसने इस तरह अपने शीश पर धारण कर लिया जिस तरह अपने स्वामी के हाथ से मिली हुई प्रसादरूप माला को सेवक धारण कर लेता है। उसने कहा—"बहुत अच्छा। मुझे आपकी आज्ञा सर्वथा मान्य है। लीजिए, आपकी आज्ञा के पालन के लिए मैं चला"।

उसके उठने पर इन्द्र ने अपने हाथ से उसकी पीठ ठोंकी—उस हाथ से जो अपने वाहन ऐरावत का उत्साह बढ़ाने के लिए उस पर बार बार थपकियाँ देने से कर्कश हो गया था।

इन्द्र की सभा से बाहर आकर मनोभव ने यह प्रतिज्ञा की कि मेरा यह शरीर चाहे रहे, चाहे जाय; परन्तु देवताओं की कार्यसिद्धि के लिए मैं कोई बात उठा न रक्खूंगा। जब तक शरीर में प्राण हैं तब तक, जिस तरह हो सकेगा, गिरिजा पर महादेवजी को अनुरक्त करने की चेष्टा मैं उपाय भर अवश्य करूंगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके उसने उसी पर्वत-शिखर की राह ली जिस पर महादेवजी तपस्या कर रहे थे। उसे उस तरफ़ जाते देख उसके प्यारे मित्र वसन्त और पत्नी रति ने भी उस का अनुगमन किया। स्वीकृत कार्य की कठिनता का विचार करके वे दोनों बेतरह भयभीत हो उठे। परन्तु प्रेमाधिक्य के कारण उन्होंने काम का साथ न छोड़ा।

ज्योंही मदन महोदय का आगमन पर्वत के उस शिखर पर हुआ त्यों ही उसके सखा वसन्त ने अपना प्रभाव प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया। काम को अपने बल का जो इतना अभिमान है उसका अधिकांश कारण वसन्त ही है। उसी की सहायता से वह बड़े बड़े काम कर दिखाता है। यह वसन्त क्या है, काम की अभिमानरूप दूसरी आत्मा है। इसी से वसन्त ने अपने मित्र के निज-विषयक अभिमान को सार्थक करने के लिए अकस्मात् अपना आविर्भाव किया। उस पर्वत पर वसन्त ऋतु का दृश्य दिखाई देने लगा और समाधिस्थ मुनियों की समाधिविघातक बातें होने लगीं।

असमय में ही पति के दूर चले जाने से पत्नी जिस तरह वियोग-व्यथित होकर ठण्ढी साँसें भरने लगती है उसी तरह दक्षिण दिशा भी व्यथित सी हो उठी। बात यह हुई कि समय के पहले ही सूर्य ने उस दिशा को छोड़कर उत्तर दिशा का आश्रय लिया। इसी से मलयानिल-रूपी वायु बहा कर दक्षिण दिशा ने अपने मुख से ठण्ढी साँसें सी लेना आरम्भ कर दिया।

बजते हुए नूपुरोंवाले पैर से अशोक वृक्ष को जब तक सुन्दरी नारियाँ नहीं स्पर्श करतीं तब तक उस पर फूल नहीं खिलते। परन्तु वसन्त के प्रादुर्भाव से उन पेड़ों ने इस मर्यादा को तोड़ दिया। वे सब के सब तत्काल ही फूल उठे। डालियाँ ही नहीं, उनके तने तक कोमल कोमल नवीन पत्तेधारी फूलों से आच्छादित हो गये। आमों पर भी लाल लाल कोमल पत्ते तत्काल निकल आये और काम के नवल-फूलरूपी बाण भी उन पर दिखाई देने लगे। जिसका बाण होता है उस पर उस का नाम भी अङ्कित रहता है। काम के साथी वसन्त ने इस त्रुटि की भी पूर्ति कर दी। उसने आम के कुसुमरूपी शरों पर काले काले भौंरों को बिठा कर उनके बहाने अपने साथी मनोभव के नामाक्षर भी अङ्कित से कर दिये।

कनेर के पेड़ भी फूल उठे। उनके फूलों का रङ्ग यद्यपि बहुत मनोहर होता है, परन्तु उनमें सुगन्धि नहीं होती। सुवासपूर्ण अन्य फूलों को देख कर इन बेचारे कनेरों को बहुत दुःख हुआ। ब्रह्मा की कुछ आदत ही ऐसी है कि चाहे जो वस्तु हो उसमें एक न एक अवगुण या दोष की व्यवस्था किये बिना वह नहीं रहता। उसने अब तक ऐसी एक भी वस्तु नहीं उत्पन्न की जिस में गुण ही गुण हों, दोष एक भी न हो। अतएव कनेर के फूलों में सुगन्धि का न होना आश्चर्य की बात नहीं।

बालचन्द्रमा के सदृश टेढ़े टेढ़े लाल रङ्ग के अधखिले फूलों से पलाश के वृक्षों की शोभा देखने योग्य हो गई। उन्हें देख कर देखनेवालों को ऐसा मालूम होने लगा जैसे ऋतुराज वसन्त ने वनस्थलियों पर अपने नखों से लाल लाल क्षत कर दिये हों।

नई वसन्ती ऋतु की शोभारूपिणी लक्ष्मी ने तो शृङ्गार करने में कमाल हो कर दिया। उसने तिलक नामक पेड़ों के फूलों को तो तिलक के समान अपने मस्तक पर धारण किया; काली काली भ्रमर-पङ्क्तियों से काजल का काम लिया; और आम के लाल लाल नवल-पत्ररूपी ओठों को बाल सूर्य की धूप के समान कोमल लालिमा से अलङ्कृत किया। अतएव उसकी शोभा बहुत ही बढ़ गई।

वसन्त का आविर्भाव होने से चिरोंजी के वृक्ष भी रुचिर पुष्पों से पुष्पित हो उठे। उनसे उड़ उड़ कर पराग चारों तरफ़ गिरने लगा। वह मृगों की आँखों में जो पड़ा तो वे अन्धे से हो गये। मदोद्धत तो वे थे ही। आँख में फूलों की रज पड़ जाने से वे और भी पागल से हो गये और इधर उधर भागने लगे। हवा के रुख़ की परवा न करके उस तरफ़ भी वे दौड़ने लगे। अतएव उनकी आँखों में पराग के कण और भी अधिक भर गये। फिर क्या था। सारे वन में खर-खराहट मच गई। बात यह हुई कि पेड़ों के पत्ते गिर जाने से सारी वनस्थली उन पुराने पत्तों से परिपूर्ण हो रही थी। उन्हीं के ऊपर से जो मृग दौड़े तो उनसे खरखर, खरखर शब्द सुनाई देने लगा।

वसन्त आने से कोकिल भी आम की मञ्जरी का सेवन कर करके उन्मत्त हो उठे। उनके कण्ठों में लालिमा दौड़ गई। मद से मत्त होने के कारण उन्होंने बड़ी ही मधुर और मनोहारिणी कूक सुनाना आरम्भ कर दिया। उस कूक को मदन महीप की आज्ञा सी समझ कर मानवती महिलाओं ने अपना अपना मान तुरन्त ही छोड़ दिया।

हिम का गिरना बन्द हो जाने पर किन्नरों की स्त्रियों के अधर विशद हो गये। उनका फटना बन्द हो गया। उनके

मुखों की कान्ति भी तप्त सुवर्ण की कान्ति के सदृश दिखाई देने लगी। उनके शरीर पर अगर, कस्तूरी और चन्दन आदि से खींचे गये बेलबूटे पसीने के कणों से धुलने लगे।

महादेवजी के उस तपोवन में जितने तपस्वी थे वे सब, अकाल ही में वसन्त ऋतु का आविर्भाव देख कर, विचलित हो उठे। उनके भी हृदय में मनोविकार उत्पन्न होने के लक्षण दिखाई देने लगे। बड़ी कठिनता से किसी तरह वे लोग अपने चञ्चल हुए मन की गति को रोकने में समर्थ हुए—बड़े प्रयत्न से वे मन को अपने वश में रख सके। अपनी प्रियतमा पत्नी रति को साथ लिये हुए मनोभव ज्योंही अपना पुष्पचाप चढ़ा कर उस पर्वत-शिखर पर पहुँचा त्योंही वहाँ रहने वाले प्राणियों की दशा कुछ की कुछ हो गई। उन सब के मन विकार से विकल हो उठे। प्रेमातिरेक से विह्वल होकर उन्होंने शृङ्गार-रस-सूचक क्रियायें आरम्भ कर दीं। पुष्परूपी एक ही पात्र में भरे हुए मकरन्द को भ्रमर और भ्रमरी दोनों पीने लगे। पहले तो भ्रमरी ने उस मकरन्दरूपी आसव का सेवन किया। फिर, जो कुछ उसमें से बच रहा उसे, भ्रमर ने पी लिया। कृष्णसार हिरन भी कामवश हो गये। पास ही खड़ी हुई हिरनियों को उन्होंने सींगों से खुजलाना शुरू किया। उनके सींगों के स्पर्श से हिरनियों को ऐसा अलौकिक आनन्द मिला कि उस आनन्द का अनुभव करते समय उनकी आँखें आप से आप बन्द हो गईं। खिले कमलों से गिरे हुए पराग से सुगन्धित सलिल को अपनी सूँड़ में भर कर गजिनी ने उसे बड़े ही अनुराग से अपने स्वामी गजराज के मुँह में डाल दिया। आधा खाया हुआ मृणाल-तन्तु लेकर चक्रवाक पक्षी अपनी प्रियतमा चकवाकी के पास दौड़ गया और उसे उसको बड़े आदर से खिलाने लगा।

पशु-पक्षियों की जहाँ यह दशा हो गई तहाँ औरों की दशा का क्या कहना । किन्नर लोग गाते गाते विकार के वशीभूत हो गये और किन्नरियों पर अनुराग प्रकट करने लगे—उन किन्नरियों पर जिनके मुखों पर केशर, कस्तूरी आदि से रची गई पत्रावली, परिश्रम के कारण उत्पन्न हुए पसीने से, कुछ कुछ धुल गई थी और सुमन-सुवासित मद्य पीने से जिनकी आँखें अरुण हो रही थीं ।

जङ्गम जीवों की तो बात ही नहीं, वृक्ष तक मनोविकारों से उच्छ्वसित हो उठे । पुष्पगुच्छरूपी उरोजोंवाली, लोल-पल्लव-रूपी ओष्ठोंवाली, ललितलतारूपिणी वधुओं के द्वारा, झुकी हुई शाखामयी भुजवल्लियों के बन्धनों से वे भी बँध गये । लतायें झुक झुक कर वृक्षों से लिपट गईं ।

शङ्कर के समाधि-मण्डप के चारों ओर अप्सराओं के मनोहारी गान होने और शिवजी के कानों तक पहुँचने लगे । परन्तु उनके हृदय पर उनके गाने का कुछ भी असर न हुआ । वे पूर्ववत् समाधि लगाये आत्मचिन्तन करते रहे । उनका मन ज़रा भी न डिगा । बात यह है कि मन को वशीभूत रखने वाले जितेन्द्रिय महात्माओं की समाधि ऐसे ऐसे विघ्नों से कभी भङ्ग नहीं हो सकती ।

तपोवन में सहसा नाना प्रकार की विक्रियायें होती देख शिवजी का प्रधान गण नन्दी, बायें हाथ में सुवर्ण-दण्ड लेकर, अपने स्वामी के लतागृह के द्वार पर खड़ा हो गया । उसने चारों तरफ़ आँख उठा कर रोष और विस्मय से देखा । फिर मुँह पर उंगली रख कर उसने इशारे से सारे गणों से कहा—"ख़बरदार, जो ज़रा सी चञ्चलता की ! चुप ! अपनी जगह से जो हिले तो कुशल नहीं" । उसके इस रोषसूचक इशारे ने बिजली का काम किया । वृक्षों की डालियों का हिलना डुलना

बन्द हो गया। भौंरों की गुञ्जार भी बन्द हो गई। पक्षियों का कलकल शब्द शान्त हो गया। मृग जहाँ के वहाँ खड़े रह गये। मतलब यह कि वह सारा तपोवन निर्जीव किंवा चित्र लिखा सा दिखाई देने लगा। चपलता और चलविचल का एकदम तिरोभाव हो गया।

यात्रा में सम्मुख शुक्र अशुभ माना जाता है। इसी से उस की दृष्टि बचाई जाती है। सुमन-शायक काम के लिए शिव जी का गण नन्दी भी शुक्र ही के सदृश था। नन्दी की दृष्टि यदि उसपर पड़ जाती तो उसकी ख़ैर न थी। इसी से उसे नन्दी से डर था। पर शङ्कर के पास तक उसे पहुँचना अवश्य था। अतएव किसी तरह नन्दी की दृष्टि बचा कर वह महादेवजी के समाधि-मण्डप के भीतर पहुंच ही गया—उस मण्डप के भीतर जिसके चारों ओर सुरपुन्नाग नामक वृक्षों की डालियाँ आपस में एक दूसरी को छू रही थीं। वहाँ इन पेड़ों का कुञ्ज था। वह इतना घना था कि एक पेड़ की डालियाँ दूसरे के भीतर तक चली गई थीं। उन से वह आश्रम पूर्णतः आच्छादित था।

मृत्यु यद्यपि समीप आ गई ह तथापि मनोज को इस की कुछ भी ख़बर नहीं। वह शङ्कर की समाधि में विघ्न डालने के लिए उनके पास पहुंच ही गया। जाकर उसने देखा कि देव-दारु-वृक्ष की वेदी पर बाघम्बर बिछा हुआ है। उसी पर वीरासन लगाये हुए भगवान् त्रिलोचन समाधिस्थ हैं। उनके शरीर का ऊपरी भाग स्थिर है—हिलता डुलता नहीं। उनके दोनों विशाल कन्धे कुछ कुछ झुके हुए हैं। हथेलियों को ऊपर करके दोनों हाथों को उन्होंने अपनी गोद पर रख लिया है। इस तरह रक्खे हुए उनके हाथ खिले हुए कमलों के सदृश मालूम होरहे हैं। ऊँची उठी हुई जटायें सर्पों की डोरियों से

कसी हुई हैं। दुहराई हुई रुद्राक्ष की माला कानों से लटक रही है। नीले रङ्ग की मृगछाला गाँठ कर शरीर पर धारण की हुई है। उनके नील वर्ण कण्ठ की आभा से उस मृगछाला की नीलिमा और भी अधिक हो गई है। आँखों की पुतलियाँ उग्रताव्यञ्जक, परन्तु निश्चल हैं। भौंहें भी स्थिर हैं; पलकें भी नहीं गिरतीं। नेत्र नीचे को हैं। उनसे वे नासा के अग्र-भाग को देख रहे हैं। शरीर के भीतर सञ्चार करने वाले प्राण आदिक वायुसमूह का आवागमन उन्होंने रोक दिया है। इस से वे वृष्टि-रहित मेघ, तरङ्ग-रहित जलाशय और कम्प-रहित दीपक के समान शोभित हो रहे हैं। ब्रह्मरन्ध्र से उदित हुई ज्योति के सुकुमार किरण, ललाटवर्ती तीसरे नेत्र की राह से, निकल रहे हैं। उन किरणों की कान्ति के सामने, शिवजी के शीर्षस्थ बाल चन्द्रमा की मृणालतन्तु से भी अधिक कोमल कान्ति मलिन मालूम हो रही है। समाधि-बल से उन्होंने मन की गति को एकदम ही रोक दिया है। शरीर के नव-द्वारों में से किसी एक तक भी मन की पहुँच नहीं। सम्पूर्णतः अपने वश में करके उसे उन्होंने अपने हृदय में स्थापित कर लिया है। इस प्रकार चित्त-वृत्ति का निरोध करके वे उस परमात्मा को अपनी ही आत्मा में देख रहे हैं जिसे आत्मज्ञानी लोग अविनाशी कहते हैं। अर्थात् वे ब्रह्मानन्द में निमग्न हैं।

भगवान् त्रिलोचन का ऐसा दुर्धर्ष रूप बहुत पास से देख कर रति-पति का दिल दहल गया। उसने कहा—"शस्त्रास्त्र द्वारा परास्त करना तो दूर की बात है, इनकी धर्षणा तो मन के द्वारा भी नहीं की जा सकती। यदि कोई चाहे कि मन ही मन इनकी प्रतिकूलता करें—इन्हें डरा दें या इन्हें परास्त कर दें तो यह भी असम्भव है"। यह सोच कर वह बे तरह भयभीत

हो उठा। उसका हाथ काँपने लगा और उससे धनुष-बाण कब गिर गया, यह भी उसे न मालूम हुआ।

इस प्रकार मनोभव का सारा वीर्य और बल विगलित सा हो गया। उसके होश उड़ गये। इस समय यदि एक आकस्मिक घटना न हो जाती तो उस बेचारे की न मालूम क्या दशा होती। सम्भव है उसे वहाँ से बिना अपनी शक्ति का कुछ भी प्रभाव दिखाये भागना पड़ता। परन्तु उसके सौभाग्य से उसी समय वहाँ पर पार्वती आ गई। उसने अपनी शरीर-सौन्दर्यरूपिणी सञ्जीवनी के गुण से मनोभव के नष्टप्राय बल को पुनरुज्जीवित सा कर दिया। वह फिर सँभल गया। उसने देखा कि शैलेशकिशोरी पार्वती अकेली ही नहीं; उसके साथ वनदेवियों के रूप में उसकी दो सखियाँ भी हैं और वे उसके पीछे पीछे आ रही हैं।

उस समय पार्वती का रूप बहुत ही अवलोकनीय था। उसने अपने शरीर पर तरह तरह के वसन्ती फूलों के गहने पहन रक्खे थे। शरीर पर धारण किये गये अशोक के फूलों से वह पद्मराग मणियों की शोभा का तिरस्कार कर रही थी; कनेर के फूलों के गजरों से तप्त सुवर्ण की द्युति को लज्जित कर रही थी और निर्गुण्डी के फूलों की माला से मोतियों की माला की शोभा को फटकार बता रही थी। बाल-सूर्य के आतप-सदृश अरुण वस्त्र वह धारण किये हुए थी। उरोजों के बोझ से वह कुछ झुकी हुई सी मालूम होती थी। उसे गुलाबी रङ्ग की साड़ी पहने और अनेक प्रकार के फूलों के आभूषण धारण किये हुए देख कर ऐसा मालूम होता था, जैसे अनेक पुष्प-गुच्छों के बोझ से झुकी हुई नवीन-पल्लवधारिणी लता चली आ रही हो। उसकी कमर पर बकुल के फूलों की करधनी बहुत ही शोभा दे रही थी। वह अपनी जगह से बार बार नीचे उतर आती थी

और पार्वती अपने हाथ से बार बार उसे ऊपर चढ़ाती थी। यह करधनी क्या थी, मनोभव के धनुष की दूसरी प्रत्यञ्चा के सदृश थी। इसे उसने पार्वती के पास यह सोचकर धरोहर सी रख दी थी कि काम पड़ने पर फिर कभी इसे उठा ले जाऊँगा। पार्वती के निश्वास में अद्भुत सुगन्धि थी। उसके कारण उस के बिम्बाधरों के आस पास दूर दूर से भ्रमर दौड़े आ रहे थे। उस सुगन्धि से उनकी प्यास बहुत बढ़ गई थी। इसी से वे उसके बिम्बाधरों का रस पान करने के लिए व्याकुल हो रहे थे और उसके मुख की ओर बार बार आते थे। उनसे वह तङ्ग आ रही थी। उसकी दृष्टि चञ्चल हो रही थी और वह हाथ में धारण किये हुए लीला-कमल से बार बार उनको दूर हटाती थी।

ऐसी परम सुन्दरी पार्वती को देखकर मनोभव ने मन ही मन कहा—"इसका तो प्रत्येक अवयव सुन्दरता-समूह का आकार है। कहीं किसी भी अवयव में दोष का लेश भी नहीं। यह तो मेरी पत्नी रति से भी अधिक सौन्दर्यवती है। इसका शरीर-सौन्दर्य तो उसके भी सौन्दर्य को लज्जित कर रहा है"। इस प्रकार विचार करके वह अपनी हीनता और असमर्थता को भूल गया। उसे धीरज हो आया। उसने कहा कि इस रूप-राशि की सहायता से जितेन्द्रिय शङ्कर को वशीभूत करने की अब अवश्य ही चेष्टा करनी चाहिए। बहुत सम्भव है कि पार्वती के द्वारा मेरे प्रतिज्ञात कार्य में मुझे बहुत कुछ सहायता मिले।

इतने में पार्वती अपने भावी पति शिवजी के लता-मण्डप के द्वार पर पहुँच गई। उधर शिवजी भी अपने हृदय में पर-मात्म-संज्ञक ज्योति का साक्षात्कार कर के जाग पड़े। ब्रह्मा-नन्द की प्राप्ति हो जाने पर उन्होंने समाधि छोड़ दी और प्राण-

वायु का जो निरोध कर रक्खा था उस निरोध को भी धीरे धीरे उन्होंने शिथिल कर दिया। उनका श्वास चलने लगा। जिस वेदी पर वे बैठे थे उसके नीचे के भूमिभाग को शेष अपने फनों के ऊपर बड़े ही परिश्रम से धारण कर रहा था। बात यह थी कि शङ्कर के शरीर के गुरुतर बोझ के कारण शेष के फन दबे जाते थे। परन्तु समाधि का लय होने पर शिवजी ने जो निबिड़ वीरासन का भेद किया तो दबाव कम हो गया। अतएव शेष का बोझ हलका हो गया।

द्वार पर पार्वती खड़ी ही थी। अतएव शिवजी को समाधि से विरत हुआ देख नन्दी ने उसके आगमन की सूचना उनको दी। वह बोला—"महाराज! शैल-सुता पार्वती सेवा के लिए उपस्थित है"। यह सुनकर शिवजी ने भृकुटी के इशारे से पार्वती को भीतर ले आने की आज्ञा दी।

आज्ञानुसार नन्दी, आश्रम के भीतर जहाँ शिवजी बैठे थे, वहाँ, पार्वती को ले गया। उसके साथ वनदेवियों के रूप में उसकी दोनों सखियाँ भी गईं। उन दोनों ने भीतर जाकर पहले तो भक्तिभावपूर्वक शिवजी को नमस्कार किया। फिर उन्होंने अपने ही हाथ से तोड़े गये कोमल पल्लवों से संयुक्त वसन्त-ऋतु-सम्बन्धी फूल अञ्जलि में लेकर महादेवजी के पैरों पर चढ़ाये।

इसके अनन्तर पार्वती ने भी अपने मस्तक को भूमि पर टेक कर, नम्रतापूर्वक, वृषभध्वज शङ्कर को प्रणाम किया। प्रणाम करते समय उसकी नील अलकों की शोभा बढ़ाने वाले कनेर के नवीन फूल और कानों पर कुण्डल के सदृश धारण किये गये कोमल पल्लव वहीं शिवजी के सामने गिर गये। पार्वती के प्रणिपात करने पर शिवजी ने उसे आशीर्वाद

दिया। उन्होंने कहा—"तुझे ऐसा पति मिले जिसने कभी और किसी स्त्री का मुँह न देखा हो"। उनका यह आशीर्वाद सर्वथा यथार्थ था। सच तो यह है कि महापुरुषों और महात्माओं के मुख से जो कुछ निकलता है, सच ही निकलता है। उनका कथन कभी विपरीत अर्थ का बोधक नहीं होता।

मनोभव यह तमाशा छिपे छिपे देख रहा था। अपने कार्य की सिद्धि के लिए उसने इस अवसर को बहुत ही उपयुक्त समझा। अतएव, आग के मुख में घुसने की इच्छा रखने वाले पतङ्ग के समान, वह शिवजी पर शर-सन्धान करने के लिए तैयार होगया। उसने भगवान् शूलपाणि को लक्ष्य करके पार्वती के सामने ही अपने धनुष् की प्रत्यञ्चा को बार बार तानना आरम्भ कर दिया।

इधर पार्वती ने परम तपस्वी शिव जी को अपने लाल लाल कमल-कोमल हाथ से, मन्दाकिनी गङ्गा में उत्पन्न हुए कमलबीजों की माला, बड़े आदर से, अर्पण की। कमल के ये बीज ऐसे वैसे न थे। सूर्यदेवता ने इन्हें स्वयं ही अपनी सुन्दर किरणों से अच्छी तरह सुखाया था। माला को देख कर शिवजी ने सोचा कि पार्वती का मुझ पर विशेष प्रेम है। उसी प्रेम के वशीभूत होकर यह जपमालिका इसने अर्पण की है। अतएव इसकी इस भेट का स्वीकार करने से इसे अवश्य ही सन्तोष होगा। यह विचार करके इधर तो उन्होंने उस माला को ग्रहण किया और उधर पुष्पशायक ने कभी निष्फल न जाने वाले अपने सम्मोहन नामक बाण को धनुष पर चढ़ा दिया। उसके चढ़ाये जाते ही शिवजी का चित्त चञ्चल हो उठा। उनका धैर्य हाथ से किञ्चित् जाता रहा। चन्द्रोदय के समय सलिलराशि समुद्र जिस तरह कुछ क्षुब्ध हो उठता है

उसी तरह शिवजी का हृदय भी क्षुब्ध हो उठा और वे पार्वती के बिम्बाधरधारी मुख को बड़े चाव से देखने लगे। उनको इस प्रकार अपनी तरफ़ आँखें किये देख, खिले हुए कदम्ब-कुसुमों के सदृश अपने पुलक-पूर्ण अवयवों के विक्षेप के बहाने, पार्वती ने भी अपना मानसिक भाव प्रकट कर दिया। लज्जा के कारण भ्रान्तविलोचनधारी अपने मनोहर मुख को तिरछा करके वह वहीं खड़ी हो गई।

मनोविकार की सहसा उत्पत्ति देखकर भगवान् शूलपाणि को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे जितेन्द्रिय थे; इन्द्रियाँ उनके वश में थीं। अतएव उस विकार को तो उन्होंने प्रयत्न-पूर्वक वहीं रोक दिया। पर वे सोचने लगे कि अकस्मात् चित्तक्षोभ होने का कारण क्या है। उसे जानने के लिए उन्होंने अपने चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ाई। वे देखते क्या हैं कि सामने ही एक पेड़ पर पञ्च-शायक खड़ा है। उसके कन्धे झुके हुए हैं। बायाँ पैर आगे को बढ़ा हुआ है और दाहिना पैर सङ्कुचित हो रहा है। दाहिने हाथ की मुट्ठी दाहिने नेत्र के कोने पर है। धनुष् को उसने इतने ज़ोर से ताना है कि उसका चक्र सा बन गया है। धनुर्वेद में वर्णन किये गये आलीढ़ नामक आसन का आश्रय लेकर वह बाण-प्रहार करने के लिए उद्यत है। उसका बाण प्रत्यञ्चा से छूटने ही चाहता है। उसके द्वारा इस प्रकार अपनी तपश्चर्या पर आक्रमण होते देख भगवान् त्रिलोचन की भौंहें भङ्ग हो गईं। मारे क्रोध के उनकी मुखचर्या अत्यन्त ही भयानक हो गई। प्रलय होने के से लक्षण दिखाई देने लगे। उनके इस कराल कोप का परिणाम यह हुआ कि उनके तीसरे नेत्र से देदीप्यमान ज्वालामयी आग की बढ़ी हुई लपट सहसा निकल पड़ी।

मनोज महोदय की माया की लीला देखने के लिए देवता लोग, अपने अपने विमानों पर बैठ कर, पहले ही आकाश में आगये थे। त्रिनयन शङ्कर के क्रोध का यह हाल देख कर वे बे-तरह घबरा गये। उन्होंने वहीं आकाश से चिल्ला चिल्लाकर प्रार्थना आरम्भ कर दी—"प्रभो! इतना क्रोध न कीजिए। बहुत हुआ, बस, बस। क्षमा कीजिए। जाने दीजिए"। परन्तु उनकी यहाँ सुनता कौन है। जब तक वे इस प्रकार निवेदन करें करें तब तक त्रिपुरान्तकारी त्रिलोचन के तीसरे नेत्र से निकली हुई आग की उस लपट ने मनोभव को जला कर राख का ढेर कर दिया।

उस बढ़ी हुई लपट को अपने पति की तरफ़ जाते देख रति भयभीत हो गई। उसे इतना दुस्सह दुःख हुआ कि इन्द्रियों की चेतना का नाश हो गया। बेहोश होकर वह ज़मीन पर गिर पड़ी। मूर्च्छित हो जाने के कारण कुछ देर तक उसे अपने पति के जल जाने का ज्ञान ही न हुआ। उसे मूर्च्छा क्या आगई, मानों दैव ने उस पर एक प्रकार का उपकार ही किया। क्योंकि क्षण भर ही सही, पतिनाश-सम्बन्धिनी दुस्सह वेदनायें भोगने से तो वह बच गई।

वज्र जिस तरह वृक्ष के टुकड़े टुकड़े करके उसे नष्ट कर देता है उसी तरह तपश्चर्या में विघ्न डालने वाले पञ्चशायक का नाश करके शिवजी यह सोचने लगे कि जो कुछ होना था सो हो गया; अब क्या करना चाहिए। उन्होंने इस सारे उत्पात का कारण पार्वती को समझा। अतएव उन्होंने कहा, स्त्री से दूर ही रहना चाहिए। स्त्री का सान्निध्य बचाने के लिए अब इस स्थान को ही छोड़ देना उचित है। न मैं यहाँ रहूँगा न पार्वती मुझे देखने को मिलेगी। इस प्रकार विचार करके

भूतनाथ अपने भूतों और गणों सहित तत्काल अन्तर्द्धान होगये।

इस दुर्घटना से पार्वती को असीम सन्ताप हुआ। उसने कहा—"हाय हाय! मेरे समुन्नतिशाली पिता के अभिलाष का ही आज अन्त नहीं हो गया, मेरा यह शरीर-सौन्दर्य भी व्यर्थ हो गया! पिता की इच्छा थी कि शङ्कर के साथ मेरा विवाह हो जाय; पर इस दुर्घटना से उसकी उस इच्छा पर भी पानी पड़ गया और मेरे शरीर की सुन्दरता पर भी। सब से अधिक परिताप और लज्जा की बात तो यह हुई कि यह सारा सन्ताप-कारी व्यापार सखियों के सामने ही हुआ। इस प्रकार दुःख और परिताप से अभिभूत होकर वह बेचारी अपनी कुटी को किसी तरह लौट गई। उसका समस्त उत्साह मिट्टी में मिल गया।

मदन-दहन का समाचार सुन कर शैलराज हिमालय पार्वती के आश्रम में दौड़ा आया। उसने आकर देखा कि पार्वती की दशा बहुत दयनीय है। भगवान् पिनाकपाणि की उस कोप-सूचक मुखच्छवि का चित्र अब तक उसके नेत्रों के सामने है। अतएव मारे डर के वह आँखें तक नहीं खोलती। यह दशा देख कर हिमालय ने उसे अपने दोनों हाथों पर उठा लिया और अपने शरीर को लम्बा करके उसने इस प्रकार जल्दी जल्दी अपने घर की राह ली जिस प्रकार कि कमलिनी-लता को अपने दोनों दाँतों पर रख कर ऐरावत हाथी अपने गन्तव्य स्थान की तरफ़ क़दम बढ़ाता चला जाता है।

चौथा सर्ग।

रति का विलाप।

विवश और विह्वल हुई रति बड़ी देर तक मूर्च्छित पड़ी रही। उसे अपने तन, मन की कुछ भी सुध न रही। जब वह जगी तब उसे अपनी नवीन वैधव्यदशा का ख़याल आया। अतएव उसे बड़ी ही उत्कट वेदनायें होने लगीं। दैव ने मानों उसे इन वेदनाओं का अनुभव कराने ही के लिए उसकी मूर्च्छा का अन्त कर दिया। होश में आते ही उसने आँखें खोल दीं। वह अपने चारों तरफ़ देखने लगी। पति की जीवित दशा में उसे बार बार देखने पर भी उसके नेत्रों को तृप्ति न होती थी। इस समय उन्हीं अतृप्त नेत्रों से उसे पति के दर्शन न हुए। इस कारण उसे उसके जलाये जाने पर विश्वास ही न हुआ। उसने पति का न दिखाई देना अपने अतृप्त नेत्रों ही का अपराध समझा। क्योंकि जिसे देख कर तृप्ति नहीं होती उसे बार बार देखने की इच्छा से नेत्र यही बहाना किया करते हैं कि अभी नहीं देखा। अतएव वह कहने लगी—"प्राणनाथ! कहाँ हो? क्यों नहीं दर्शन देते? जीते तो हो?" इतना कह कर ज्योंही वह उठ खड़ी हुई त्योंही उसे, सामने ही, शङ्कर के कोपानल से भस्म हुए अपने पति की भस्ममयी मूर्ति मात्र दिखाई दी। उसे देख वह और भी विकल और विह्वल हो कर फिर ज़मीन पर गिर पड़ी और धूल में लोटने लगी। उसके बाल बिखर गये और सारा शरीर धूलि-धूसरित हो

गया। बड़े ही करुण-स्वर से उसने विलाप करना आरम्भ किया। उसके उस हृदय-विदारक विलाप को सुन कर उस वनस्थली के जीव-जन्तु भी उसके दुःख से अभिभूत से हो उठे। उसने रोना और इस प्रकार विलाप करना आरम्भ किया—

तुम तो बड़े ही सुन्दर-शरीर-वाले थे। तुम्हारे शरीर की सुन्दरता और कान्ति के कारण ही बड़े बड़े कवि और महाकवि भी विलासवती वस्तुओं की उपमा तुम्हारे शरीर से देते थे। हाय हाय! तुम्हारे उसी लोकोत्तर सौन्दर्यशाली शरीर की आज यह गति हो गई! स्त्रियों का हृदय सचमुच ही अत्यन्त कठोर होता है। इसीसे मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हुआ। मेरा जीवन तो सर्वथा तुम्हारे ही अधीन था। मैं तो तुम्हीं को देख कर जीती थी। परन्तु मेरे प्रेम और स्नेह की कुछ भी परवा न कर के तुम मुझे इस तरह अकेली छोड़ कर कहाँ चले गये? बाँध टूट जाने से जलाशय का जल कमलिनी को छोड़ कर जिस तरह एक क्षण में बह जाता है उसी तरह मेरे सारे अनुराग को भूल कर क्षण ही भर में तुम मुझे छोड़ गये। न तो तुम्हीं ने आज तक मेरे प्रतिकूल कोई काम किया और न मैंने ही तुम्हारे प्रतिकूल। हम दोनों आज तक सदा ही एक दूसरे के अनुकूल आचरण करते आये हैं। फिर, नहीं मालूम, अकारण ही, तुम क्यों अप्रसन्न हो गये? मैं इस प्रकार बिलख बिलख कर रो रही हूँ। परन्तु तुम दर्शन तक देने की कृपा नहीं करते। हाँ, तुम्हारी अप्रसन्नता का कारण मुझे मालूम हो गया। भूल से एक बार तुमने किसी अन्य स्त्री का नाम ले लिया था। इस पर मुझे क्रोध आ गया था और मैंने अपनी करधनी से तुम्हें बाँध दिया था। एक बार और भी कुछ ऐसी ही घटना हो गई थी। कमल के कुण्डल फेंक

कर मैंने तुम्हें मारा था। उनके केसर तुम्हारी आँखों में चले गये थे। इस से तुम्हें कुछ कष्ट हुआ था। जान पड़ता है, आज तुमने मेरे इन्हीं अपराधों के कारण मुझे यह दण्ड दिया है। तुम तो कहा करते थे कि तू मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है; तू सदा मेरे हृदय में रहती है। परन्तु अब मुझे मालूम हुआ कि यह सब बनावट थी। मुझे प्रसन्न करने ही के लिए तुम ऐसी मीठी मीठी बातें करते थे। यदि तुमने मुझे अपने हृदय में स्थान दिया होता तो यह कभी न होता कि तुम्हारा शरीर तो नष्ट हो जाता और मेरा बना रहता। तुम्हारे साथ ही मेरा भी नाश हो जाना चाहिए था। तुम तो परलोक के पथिक हो गये और मुझे यहीं छोड़ गये। परन्तु मैं यहाँ रहने वाली नहीं। मैं भी शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊँगी। जिस मार्ग से तुम अभी अभी गये हो, उसी से मैं भी आऊँगी। तुम मुझसे अलग नहीं हो सकते। मैं भी अपना शरीर आग में होम दूँगी। मैं तो तुम्हें इस तरह प्राप्त ही कर लूँगी। परन्तु मुझे शोक है कि कुटिल काल ने तुम्हारा नाश कर के संसार के सुख का भी नाश कर दिया। क्योंकि, देह-धारियों को बिना तुम्हारे सुख कहाँ। उनके सुख के आधार तो तुम्हीं थे। जब तुम्हीं न रहे तब कोई कैसे सुखी हो सकेगा।

रात का समय है। सूचीभेद्य अन्धकार छाया हुआ है। मेघ-गर्जना हो रही है। उसकी गड़गड़ाहट से दिल दहल रहा है। ऐसे समय में भी नायिकाओं को अपने प्रेमपात्रों के पास पहुँचाने में बिना तुम्हारे कौन समर्थ हो सकेगा? तुम्हारी ही प्रेरणा से वे अँधेरी रात में भी निर्भय होकर अपने प्रेमियों के पास पहुँच जाती थीं। तुम्हारी अनुपस्थिति में उन बेचारियों पर न मालूम अब कैसी बीतेगी।

जिसके प्रभाव से आँखों में अरुणता आ जाती है और वे अत्यन्त चञ्चल हो जाती हैं, तथा जिसके कारण मुँह से टूटे फूटे शब्दों में कुछ का कुछ निकलने लगता है, मद्य का वह मद अब व्यर्थ सा हो गया है। इस लोक से तुम्हारे प्रस्थान कर जाने के कारण मधुपान करना प्रमदाओं के लिए अब विडम्बना के सिवा और कुछ नहीं। उसका पीना तुम्हारे ही कारण सार्थक था। सो अब उसकी सार्थकता नहीं रही।

निशाकर से तुम्हारी गहरी मित्रता थी। तुम्हारे नाम-निश्शेष हो जाने से अब उसका भी उदय निष्फल ही सा है। कृष्णपक्ष बीत जाने पर शुक्लपक्ष में क्रम क्रम से उसकी वृद्धि होती है—उसका कृश शरीर धीरे धीरे पुष्ट होता है। परन्तु तुम्हारे न रहने से तुम्हारा मित्र चन्द्रमा अब अपनी उस कृशता को छोड़ते समय बहुत ही दुखी होगा। उसे अपनी कलाओं की वृद्धि से आनन्द होना तो दूर रहा, उलटा सन्ताप होगा। क्योंकि उसके उदय से जो उद्दीपन-कार्य्य होता था उसकी तो अब आवश्यकता ही न रह गई।

आम के इस नये फूले हुए फूल की भी दशा शोचनीय है। कोकिल का शब्द सुनते ही सब को इस बात की सूचना सी हो जाती थी कि हरे और लाल वृन्तवाले सहकार-सुमन खिलने लगे। इनके महत्त्व का कारण यह था कि तुम इन्हीं से बाणों का काम लेते थे। अब वे किसके बाण बनेंगे? इन पर गुञ्जार करने वाली अलि-माला की याद करके तो मुझे और भी दुःख होता है। इसी को तुम अपने धनुष की प्रत्यञ्चा बनाते थे। इस काम के लिए तुम्हें बार बार इसकी योजना करनी पड़ती थी। इसी से यह अब गुञ्जार के बहाने करुण-स्वर से विलाप सा कर रही है। इसे इस प्रकार विलपती देख मेरा बढ़ा हुआ शोक और भी बढ़ जाता है।

मधुर वाणी बोलने में कोकिलाओं की समानता करनेवाला और कोई नहीं। मिष्टालाप करने में उन्हें पूरा पण्डित देखकर ही तुम उनसे दूतियों का काम लेते थे। सांसारिक प्राणियों को वशीभूत करने के लिए तुम पहले इन्हीं कोकिलाओं के अलाप उन्हें सुनाकर उनमें शृङ्गार-रस-सम्बन्धी अनुराग की वृद्धि करते थे। क्या तुम्हें इन पर भी दया नहीं आती? पूर्ववत् मनोहर रूप धारण करके उठ बैठो। इनको फिर आज्ञा दो, ये कहाँ जायँ? किसे तुम्हारा सन्देश सुनावें? ये तो अब अत्यन्त ही अवलम्बहीन हो रही हैं।

जब मैं किसी कारण से रूठ बैठती थी—जब मैं तुम्हारी बात न मानती थी—तब तुम मेरे पैरों पड़ते थे और तरह तरह से मुझे मनाने और प्रसन्न करने की चेष्टा करते थे। उन सब बातों का स्मरण करके मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हुआ जाता है। मेरी सारी शान्ति जाती रही है। खिले हुए सुन्दर सुन्दर वसन्ती फूल चुन चुन कर तुमने स्वयं ही हार, गजरे और अन्यान्य आभूषण बनाये थे। उनको तुमने अपने ही हाथ से प्रीति-पूर्वक मुझे पहनाया था। वे सब, देखो, अब तक मैं पहने हूँ। परन्तु, हाय हाय! जिसकी कृपा से ये सब मुझे प्राप्त हुए थे, वह अब नहीं दिखाई देता। उसके सुन्दर शरीर का नाश हो गया और मैं बैठी रह गई! दारुण-हृदय देवताओं ने अपने कार्य-साधन के लिए जिस समय तुम्हें बुलाया उस समय तुम मेरे पैरों पर महावर लगा रहे थे। दाहिने पैर पर तो लगा चुके थे, बायें पर लगाना बाक़ी था। वह वैसाही बिना महावर का रह गया है। आओ, उस पर भी तो महावर की पत्र-रचना कर दो। जिस तरह पतिङ्गा आग में जल कर परलोक का पथिक हो जाता है उसी तरह मैं भी इस शरीर को जला कर शीघ्र ही तुम्हारे पास आ

आऊंगी और फिर भी तुम्हारे अङ्क का आश्रय लूँगी। परन्तु मुझे डर है कि जब तक मैं तुम्हारे पास पहुँचूँ तब तक स्वर्ग में सुराङ्गनायें कहीं तुम्हें लुभा न लें; क्योंकि वे बड़ी ही चतुर हैं। इससे अब मुझे शीघ्रता करनी चाहिए। मैं तुम्हारे पास चली तो अवश्य ही आऊँगी, पर एक बात का मुझे फिर भी बड़ा सोच रहेगा। लोग कहेंगे कि तुम्हारे जल जाने ही इसे भी जल जाना था। यदि इसकी पतिविषयक प्रीति ऊँचे दर्जे की होती तो यह विना पति की हो जाने पर एक क्षण भर भी जीती न रहती। यह मेरे लिए बहुत बड़े कलङ्क की बात होगी। हाय, हाय, अब मैं इस कलङ्क का क्षालन कैसे कर सकूँगी?

एक बात और भी ऐसी है जिससे मेरा दुस्सह दुःख दूना हो रहा है। और्ध्वदैहिक कृत्य करने के लिए तुम्हारे मृत शरीर का मण्डन भी तो मैं नहीं कर सकती। मण्डन करूँ तो कैसे करूँ। तुम्हारा तो शरीर ही नहीं रह गया। तुम्हारी तो ऐसी अतर्कित गति हुई जैसी किसी की भी नहीं होती। तुम्हारे जीवन ही का नाश न हुआ; उस के साथ ही तुम्हारे शरीर का भी नाश हो गया। प्राण चले जाने पर औरों का पञ्चभूतात्मक शरीर अवश्य ही पड़ा रह जाता है। परन्तु मैं ऐसी अभागिनी निकली कि उस मृत शरीर से भी मैं वञ्चित हो गई।

अपनी गोद में धनुष् को रख कर जब तुम धीरे धीरे अपने शर को सीधा करते थे और अपने सखा वसन्त से हँस हँस कर बातें भी करते जाते थे तब पास ही बैठी हुई मैं तुम्हारी बातें बड़े चाव से सुना करती थी। तुम भी कटाक्षपातपूर्वक मेरी तरफ़ रह रह कर देखते जाते थे। तुम्हारी उन बातों और कटाक्षों का स्मरण करके मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। तुम्हारे साथ प्रेम-पूर्ण बातें करने वाला तुम्हारा हार्दिक मित्र वह वसन्त इस समय कहाँ है। तुम्हें उसी की बदौलत अपना

धनुष् प्राप्त होता था। तुम्हारे धनुष् का निर्म्माता यही है। परन्तु इस समय वह भी मुझे नहीं दिखाई देता। क्या उसने भी मुझ दुखिया की याद भुला दी? पिनाकपाणि महादेव की क्रोधाग्नि में तुम्हारी तरह कहीं वह भी तो नहीं भस्म हो गया? वसन्त तू कहाँ गया?

रति के ऐसे विलाप-वचन वसन्त के हृदय में विपाक्त बाण की नोक की तरह घुस गये। उस की इस प्रकार आतुरता-पूर्ण और विकलता-दर्शक बातें सुन कर उसे भी महाशोक हुआ। उससे न रहा गया। वह उसके सामने आकर खड़ा हो गया। वसन्त को देखते ही रति ने और भी अधिक विलाप करना और रोना शुरू कर दिया। वह बार बार अपनी छाती पीटने लगी। बात यह है कि अपने कुटुम्बियों और इष्ट-मित्रों के आगे हृदयस्थ दुःख इस प्रकार बाहर निकल पड़ता है मानों उसके निकलने के लिए किसी ने हृदय के किवाड़ खोल दिये हों। शोक का वेग कुछ कम होने पर, दुःख से अभिभूत हुई रति वसन्त से इस प्रकार कहने लगी—

वसन्त! देख, तेरे प्यारे सखा की क्या गति हो गई! उसके सुन्दर शरीर के बदले राख की ढेरी मात्र दिखाई दे रही है। वह भी अपने स्थान पर वैसी ही नहीं रहने पाती। उसके सफ़ेद सफ़ेद कणों को पवन उड़ाये उड़ाये फिरता है। उन्हें वह कहीं इधर बखेर रहा है, कहीं उधर। प्रियतम! अपने सखा इस वसन्त को तो दर्शन दो। देखो, यह बड़ी ही उत्सुकता से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। सुनती हूँ, स्त्रियों में पुरुषों का प्रेम अचल नहीं होता, परन्तु हार्दिक मित्रों में अचल होता है। इस कारण यदि तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती तो इसी पर दया करो। मैं न सही, यह तो तुम्हारा सच्चा प्रेमी और

सर्वश्रेष्ठ सखा है। इसी को दर्शन देने के बहाने अपना मनोहारी मुख मुझे एक बार फिर दिखा दो।

यह वसन्त तुम्हारा ऐसा वैसा सहचर नहीं। तुम्हारे ऊपर इसके अनन्त उपकार हैं। कमलतन्तु की प्रत्यञ्चा वाले, और, कोमल-कुसुमरूपी बाण चलाने में अपना सानी न रखने वाले, तुम्हारे धनुष् को अलौकिक शक्ति देने वाला यही है। इसी की सहायता से सुरासुर सहित सारे संसार को तुम्हारे धनुष् की आज्ञा माननी पड़ी है। इसकी सहायता यदि न मिलती तो तुम्हें अपने बाणों और धनुष् की प्रत्यञ्चा की प्राप्ति असम्भव हो जाती और जो बड़े बड़े काम तुमने किये वे न कर सकते। अतएव इसके इन महोपकारों ही का स्मरण करके आओ; इसे धीरज तो दो।

ऋतुराज! मैं यह क्या कह रही हूँ। अब तेरे सखा का समागम सम्भव नहीं। परलोक से वह नहीं लौट सकता। वायु के झकोरे से जिस तरह दीपक बुझ जाता है उसी तरह उसका भी जीवन-दीपक बुझ गया। मैं उस दीपक की जली हुई बत्ती की तरह बच रही हूं। देख, अत्यन्त दुस्सह दुःखाग्नि में मैं सुलग रही हूं। मेरी साँस जो चल रही है वह साँस नहीं; वह तो बत्ती की तरह मुझ जली हुई के मुख और नासिका से निकला हुआ धुआँ है।

पापी दैव ने यह क्या किया! मारा तो उसने अवश्य, परन्तु उसे अच्छी तरह मारना भी न आया। मेरे पति को तो उसने जला दिया और मुझे छोड़ दिया। उसका इस तरह मुझे बचा रखना यद्यपि आधी ही हत्या के समान है, तथापि उसने मुझे भी मार ही सा डाला। क्योंकि पति के बिना मैं कितने दिन प्राणधारण कर सकूंगी? जिस वृक्ष से लता लिपट रही है उसे यदि हाथी उखाड़ फेंके तो क्या वह लता नष्ट होने से

बच जायगी ? वृक्ष के साथ ही लता का भी अवश्य ही पतन हो जायगा। अतएव अपने प्राणवल्लभ का आधा अङ्ग होने के कारण मैं भी जीती नहीं रह सकती। इससे अब एक काम कर। तू मेरे पति का बन्धु है। मैं भी तुझे अपना बन्धु ही समझती हूँ; और समय पर सहायता करना बन्धु का कर्तव्य ही है। अब तू मुझ दुखिया पर दया करके मुझे किसी तरह मेरे पति के पास पहुँचा दे। मैं तुझसे अधीनतापूर्वक अग्निदान की याचना करती हूँ। मेरे लिए ऐसा करना अनुचित नहीं। पति का अनुगमन करना तो स्त्रियों का कर्तव्य ही है। सचेतन ही इस कर्तव्य का पालन नहीं करते, अचेतनों तक में भी पत्नियाँ पति का अनुगमन करती हैं। देख, चन्द्रमा के साथ ही चन्द्रिका भी चली जाती है और मेघ के साथ ही बिजली भी विलय को प्राप्त हो जाती है।

सती होने के पहले स्त्रियाँ अनेक प्रकार के अलङ्कारों से अपने शरीर को अलङ्कृत करती हैं। परन्तु यह मुझसे न हो सकेगा मेरे पति के जले हुए शरीर की जो यह भस्म सामने पड़ी हुई दिखाई दे रही है उसी का लेप मैं अपने शरीर पर कर लूँगी। उसी को मैं अपना सब से बड़ा अलङ्कार समझूँगी। इसके अनन्तर, आग को, कोमल पल्लवों से सजाई गई शय्या समझ कर, उसी पर मैं अपने शरीर को रख दूँगी। आग को मैं आग ही न समझूँगी। उसे मैं फूलों की सेज समझ कर उसी पर लेटी हुई जल जाऊँगी।

कुसुम-शय्या की रचना में तूने हम दोनों की सैकड़ों दफ़े सहायता की है। मैं हाथ जोड़ कर तेरे पैरों पड़ती हूँ। काम मेरा और कर दे। मेरे लिए शय्या-सदृश ही चिता तैयार करने में अब देर न लगा। एक प्रार्थना मेरी और है। जब मुझे

दी गई अग्नि से चिता जलने लगे तब मलयानिल चला कर उसे खूब प्रदीप्त कर दीजियो, जिसमें मेरे जल जाने में देर न लगे—मैं झटपट ही अपने पति के पास पहुँच जाऊं। तू इस बात को स्वयं ही अच्छी तरह जानता है कि बिना मेरे तेरा सखा क्षण भर भी सुख से नहीं रह सकता। मुझे देखे बिना उसे चैन ही नहीं पड़ती। जब मैं जल जाऊं तब इतनी कृपा और करना कि हम दोनों के लिए एक ही तिलाञ्जलि देना। परलोक में मैं और तेरा वह बन्धु, दोनों ही, उसी एक ही अञ्जलि के जल का पान करेंगे। हम लोगों के लिए अलग अलग जलाञ्जलि देने की आवश्यकता नहीं। अपने सखा को उद्देश करके जब तू पिण्डदान करने लगे तब और किसी वस्तु के सङ्ग्रह के झंझट में न पड़ियो। कोमल पल्लवों से संयुक्त सहकार-कुसुमों ही का पिण्डदान दीजिओ। तुझे ज्ञात ही है कि तेरे साथी को आम की मञ्जरी कितनी प्यारी है।

आग में जल कर अपने पति का अनुगमन करने के लिए रति जब इस प्रकार तैयार होगई तब सहसा देववाणी हुई। जलाशय के सूख जाने से म्रियमाण मछली जिस तरह आषाढ़ की पहली वृष्टि के प्रभाव से फिर सचेत हो जाती है वैसे ही उस देववाणी से रति के भी हृदय में सुखाशा का सञ्चार हो आया। आकाश-वाणी ने उस विधवा पर वैसी ही दया की जैसी कि मरणासन्न मछली पर जलवृष्टि करती है। रति ने सुना कि आकाश से कोई यह कह रहा है—

हे पञ्चशायक की पत्नी! तुझे बहुत समय तक पतिहीन दशा में न रहना पड़ेगा। जल्दी ही तुझे तेरे पति की प्राप्ति होगी. त्रिलोचन की कोपाग्नि में किस कारण वह पतङ्ग की तरह जल गया, यह तुझे मालूम नहीं। सुन, तेरे पति ने ब्रह्मा के मन में ऐसा विकार उत्पन्न कर दिया कि उनका चित्त अपनी

ही सुता पर अनुरक्त हो गया। पर वे ठहरे जितेन्द्रिय। इस कारण उस मनोविकार को उन्होंने बढ़ने न दिया। उसे उन्होंने तत्काल ही रोक दिया और इस अनर्थ का कारण तेरे पति को समझ कर उन्होंने उसे शाप दिया। उसी शाप का फल तेरे पति को भोगना पड़ा है। महादेवजी के कोपानल में जल जाना उसी शाप का फल है। ब्रह्माजी को शाप देते देख धर्म्मनामक प्रजापति को तेरे पति पर दया आई। इस से उन्होंने ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि आप कृपा करके अपने शाप की अवधि निश्चित कर दीजिए। ब्रह्माजी ने यह बात मान ली। वे बोले—

बहुत अच्छा। जब पार्वती अपनी तीव्र तपस्या से शिवजी को प्रसन्न करेगी तब वे उसे अपनी अर्द्धाङ्गिनी बना लेंगे। पार्वती के साथ विवाह करने से उन्हें बहुत सन्तोष होगा। उस खुशी में वे काम को फिर जिला देंगे। तब उसे उसका पूर्व शरीर प्राप्त हो जायगा। बात यह है कि जिस तरह मेघों से वज्रपात भी होता है और अमृतवत् जल भी बरसता है उसी तरह जितेन्द्रिय महात्माओं से कोप और प्रसाद दोनों की प्राप्ति होती है। कुपित होने पर उनके वचन वज्र का सा काम करते हैं और प्रसन्न होने पर वही अमृतवत् आनन्द-दायक हो जाते हैं।

इस कारण तू अब मरने का विचार छोड़ दे। तुझे भविष्यत् में तेरा पति अवश्य मिलेगा। उसके समागम की प्रतीक्षा करती हुई अपने सुन्दर शरीर को बना रहने दे। दुःख के बाद सुख के दिन अवश्य ही आते हैं। सूर्य के प्रचण्ड आतप से सूखी हुई नदी को, वर्षा आते ही, फिर भी जल-प्रवाह की प्राप्ति हो जाती है।

ऐसे सान्त्वना-वाक्य सुना कर किसी अदृश्य देवता ने रति को बहुत कुछ धीरज दिया। इस आश्वासन के कारण

रति ने जल मरने का विचार शिथिल कर दिया। इस काम में उसके पति के साथी ऋतुपति ने भी उसकी सहायता की। समयानुसार सार्थक बातें कह कर उसने भी रति को बहुत समझाया। उसने कहा—दैववाणी कभी झूठी नहीं होती। जो कुछ तुमने सुना उस पर दृढ़ विश्वास करो। तुम्हें अवश्य ही तुम्हारा पति मिलेगा।

इस तरह समझाने बुझाने से रति के दुःख का वेग बहुत कुछ कम हो गया। तब उसने मर जाने का विचार छोड़ दिया।

इसके अनन्तर दुःखातिरेक के कारण अत्यन्त कृश हुई रति, पति-प्राप्ति के दिन की उसी तरह प्रतीक्षा करने लगी जिस तरह कि दिन में उदित हुए क्षीण-किरण चन्द्रमा की मलिन कला निशाकाल की प्रतीक्षा करती है।

पाँचवाँ सर्ग ।

पार्वती की तपस्या और फल-प्राप्ति ।

पिनाक-पाणि शङ्कर ने पार्वती की आँखों के सामने ही मनोभव को भस्म करके पार्वती का मनोरथ भी विफल कर दिया । अपने मनोभिलाष के इस तरह भग्न हो जाने पर पार्वती को अवर्णनीय दुःख हुआ । उसने कहा—मेरे इस रूप को धिक्कार है ! जिस सौन्दर्य से अपने प्रेमपात्र का चित्त आकृष्ट न हुआ उससे क्या लाभ ? वह वृथा है । सुन्दर रूप पाने का फल यही हो सकता है कि वह अपने प्यारे को मोह ले । पत्नी का सौभाग्य इसी में है कि पति उसका विशेष प्यार करे। सो यह कुछ भी न हुआ । मेरे इस शरीर-सौन्दर्य को देख कर भी शिवजी मुझ पर प्रसन्न न हुए । अब इस सुरूप के साफल्य का एकमात्र उपाय यह है कि मैं वन में कठोर तपस्या करने चली जाऊँ । मेरे सुन्दर रूप को देख कर शिवजी ने मुझ पर कृपा नहीं की तो क्या वे मुझे तीव्र तपस्या करते देख कर भी मुझ पर कृपा न करेंगे ? अपने सौन्दर्य को सफल करने के लिए अब तपस्या के सिवा और कोई साधन नहीं । तपश्चर्य्या ही से अब मैं उन्हें प्रसन्न करूंगी । पार्वती के इस निश्चय की जितनी प्रशंसा की जाय कम है । यदि वह इतनी घोर तपश्चर्या न करती तो उसे दो अलौकिक बातों की प्राप्ति भी न होती । एक तो, उसे ऐसा पति ही न मिलता । दूसरे, यदि मिलता भी तो पार्वती पर उसका उतना अनुराग ही न

होता। यह उसकी तपश्चर्या ही का प्रभाव था जो मृत्युञ्जय तो उसे पति मिला और उसने पार्वती पर प्रेम भी इतना प्रकट किया कि उसे अपना आधा अङ्ग ही दे डाला।

पार्वती के इस निश्चय का समाचार उसकी माता मेना को मिल गया। उसने सुना कि मेरी प्यारी कन्या शिवजी से प्रेम करती है और उनकी प्राप्ति के लिए तपश्चर्या करना चाहती है। इस समाचार से उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने पार्वती को बड़े ही प्यार से अपने गले लगा लिया और ऐसी घोर तपश्चर्या करने से उसे मना किया। वह बोली—

बेटी, अपने घर में मनमाने देवता हैं। तू उन्हीं की पूजा-अर्चा क्यों नहीं करती? कुल-देवताओं को प्रसन्न करने ही से तेरा मनोरथ सफल हो सकता है। तू भला क्या तप करेगी! कहाँ तेरा यह सुन्दर सुकुमार शरीर और कहाँ तपश्चरण! सिरसे के कोमल कुसुम पर यदि भ्रमर बैठ जाय तो वह उसके बोझ को सह भी लेगा। परन्तु यदि उस पर पक्षी बैठेगा तो वह टूट कर तुरन्त ही गिर जायगा। पक्षी का पाद-क्षेप भी वह न सह सकेगा। तू बहुत ही सुकुमार है। दिव्योपभोगयोग्य तेरा यह कृश शरीर दारुण तपस्या करने योग्य कदापि नहीं।

इस प्रकार मेना ने पार्वती को यद्यपि बहुत समझाया, परन्तु उसने माता का अनुरोध न माना—वह अपने निश्चय से न डिगी। बात यह है कि किसी विशेष वस्तु की प्राप्ति के लिए स्थिर हुए मन की गति उसी तरह नहीं फेरी जा सकती जिस तरह कि ऊंची भूमि से नीचे की तरफ़ बहने वाले जल-प्रवाह की गति पीछे को नहीं लौटाई जा सकती।

पार्वती ने सोचा कि तपस्या करने के लिए पिता की आज्ञा ले लेनी चाहिए। बिना उनकी अनुमति के घर छोड़ना उचित

न होगा । उधर पिता को अपनी सुता के मन का हाल मालूम हो चुका था । इस कारण उसने पहले ही से निश्चय कर लिया था कि मैं इसे तपश्चर्या करने की अनुमति दे दूंगा । अतएव जब पार्वती ने अपनी सखी के मुंह से यह कहलाया कि फलोदय होने तक आप मुझे वन जाकर तपश्चरण करने की अनुमति दे दीजिए, तब उसने प्रसन्नता-पूर्वक उसे आज्ञा दे दी । हिमालय ने सोचा कि जिस आकाङ्क्षा से यह तपस्या करने जाती है वह सचमुच ही उच्च और प्रशंसनीय है । अतएव उसकी पूर्ति के मार्ग में विघ्न डालना पितृवात्सल्य का सूचक न होगा ।

पूज्य पिता की आज्ञा पाकर पार्वती ने घर से प्रस्थान कर दिया और पर्वत के एक बड़े ही सुन्दर शिखर पर जा पहुंची । उसने वहीं तपस्या करने का निश्चय किया । उस शिखर का दृश्य बहुत ही मनोहारी था । मोरों की वहाँ बड़ी अधिकता थी । हिंस्र प्राणी वहाँ थे तो अवश्य, पर बहुत न थे । पार्वती के वहाँ रहने और तपस्या करने के कारण पर्वत की उस चोटी का नाम, पार्वती के नाम के अनुसार, पीछे से, गौरी-शिखर हो गया ।

पार्वती ने दृढ़ निश्चय किया कि मैं यहाँ तपस्वियों ही के सदृश सारा व्यवहार करूंगी । उस समय वह बड़ा ही अनमोल हार पहने हुए थी । उसके हिलने से पार्वती के हृदय पर लगा हुआ चन्दन पुंछ जाता था और वह स्वयं ही चन्दन-चर्चित हो जाता था । चन्दन लगे हुए ऐसे सुन्दर हार को तो उतार कर उसने फेंक दिया और बाल-सूर्य के समान लाल वल्कल पहन लिया । उसे उसने जो धारण किया तो शरीर की उंचाई निचाई के कारण उसके सिले हुए जोड़ तड़ तड़ टूट गये । इसके अनन्तर उसने तपस्वियों ही की तरह जटा-जूट

की भी रचना की। पर जटा धारण करने पर भी उसके सुन्दर मुख की शोभा कम न हुई। सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित केश-कलाप से वह जितना शोभायमान होता था, जटाओं से भी उतना ही शोभायमान बना रहा। सच तो यह है कि जो वस्तु स्वभाव ही से सुन्दर है उसकी सुन्दरता किसी तरह कम नहीं हो सकती। भ्रमर-मालिका के सम्पर्क से कमल जितना सुन्दर मालूम होता है सिवार के सम्पर्क से भी उतना ही सुन्दर मालूम होता है। उसके सम्पर्क से कमल की सुन्दरता कुछ भी कम नहीं होती।

घर पर कहाँ तो वह अपनी कमर में रत्नजड़ी हुई मेखला धारण करती थी कहाँ तपोवन में आकर उसने मूंज की मेखला धारण की। वह मेखला बहुत कठोर थी। अतएव उसके स्पर्श से पार्वती के रोंगटे खड़े हो गये और उसकी कमर लाल हो गई। ऐसी खुरखुरी क्या, कण्टकपूर्ण, मेखला की एक नहीं, तीन लड़ें कमर में धारण करने से पार्वती की सुकुमार त्वचा कट कर रुधिर नहीं निकल आया, यही आश्चर्य की बात है।

जब पार्वती अपने घर पर थी तब अपने ओठों पर लाक्षा-रस लगाने—उन्हें महावर से रँगने—के लिए उसे अपना हाथ बार बार ओठों पर फेरना पड़ता था। गेंद खेलने में भी उसे गेंद को अपने हाथ से बार बार उठाना और उछालना पड़ता था। गेंद उछल कर जिस समय उसके अङ्गराग-रञ्जित वक्षःस्थल के ऊपर आ जाता था उस समय वह भी लाल रङ्ग का मालूम होने लगता था। वन में आने पर पार्वती के कर को इन कामों से छुट्टी मिल गई। जिस हाथ से वह अपने कोमल अधर रंगती और गेंद खेलती थी उसी हाथ से उसने जपमालिका धारण की। यही नहीं, किन्तु उससे उसने कुश तोड़ने का भी

काम लिया। फल यह हुआ कि कुश की नोकों ने घुस कर उसकी अंगुलियों में घाव कर दिये।

पिता के घर पार्वती बड़े मोल की कोमल शय्या पर सोती थी। करवटें बदलते समय केश-कलाप में गुथे हुए फूल यदि शय्या पर गिर जाते थे तो वे उसके सुकुमार शरीर में चुभने लगते थे। उन कोमल कुसुमों से भी उसे पीड़ा पहुँचती थी। वही पार्वती अब बिना बिछौने की वेदी पर, अपने हाथ को तकिया बना कर, सोने लगी। कहाँ वह शय्या, कहाँ यह कठोर भूमि! उसने विलास-चेष्टायें भी छोड़ दीं और चञ्चल दृष्टि भी छोड़ दी। हावभाव भरी चेष्टायें तो उसने पतली पतली लताओं को और कटाक्षपूर्ण दृष्टि हरिणियों को, धरोहर सी रख छोड़ने के लिए, दे डाली। उसने शायद यह कहा कि तपश्चर्या के समय इनको रखने की आवश्यकता नहीं। तब तक, लाओ, इन्हें कहीं रख दूं। तप हो चुकने पर फिर इन्हें ले लूंगी। अतएव वल्लरियों के विलास-विभ्रम और हरिणियों की चपल दृष्टि पार्वती ही की रक्खी हुई धरोहर सी है।

तपःसाधन के नैमित्तिक कार्यों से छुट्टी पाकर पार्वती आलसी बनी नहीं बैठी रही। अपने आश्रम में छोटे छोटे पौधे लगाकर प्रति दिन वह घटस्तनों के प्रस्रवण से उन्हें सींचने लगी। धीरे धीरे वे पौधे बड़े होगये। उन पर उसका उतना प्रेम होगया जितना कि माता का सन्तति पर होता है—विशेष करके पहली सन्तति पर। वे वृक्ष ही पार्वती की पहली सन्तति के समान हुए। अतएव अपने हाथ से सींचे गये उन वृक्षों पर पार्वती का जो सुत-निर्विशेष प्रेम होगया वह कार्तिकेय के जन्म के बाद भी वैसा ही बना रहा, कम नहीं हुआ। पार्वती उन्हें अपने पुत्र ही के सदृश समझती और उनका प्यार करती रही।

आश्रम के आस पास रहने वाले हरिणों को वह अञ्जली में भर भर कर जङ्गली धान्य बड़े प्रेम से खिलाती। इस कारण वे उससे बहुत ही हिल गये। वे उसका यहाँ तक विश्वास करने लगे कि यदि वह सखियों के सामने ही उनकी आँखें की माप करती तो भी वे वहाँ से न टलते। उनकी आँखें माप कर वह अपनी मापती। वह कहती—देखूं, इनकी आँखें बड़ी हैं या मेरी।

पार्वती की कठोर तपस्या का समाचार दूर दूर तक फैल गया। वह नियमपूर्वक स्नान करती; हवन करती; वल्कल का उत्तरीय धारण किये हुए स्तोत्र आदि का पाठ करती। इस प्रकार तप और पूजा-पाठ में निमग्न पार्वती के दर्शनों की इच्छा से बड़े बड़े वयो-वृद्ध ऋषि और मुनि भी उसके आश्रम में आने लगे। यह कोई आश्चर्य-जनक और असङ्गत बात नहीं। धार्मिकों और धर्मवृद्धों की उम्र नहीं देखी जाती। पार्वती की उम्र कम थी तो क्या हुआ। तप और धर्मानुष्ठान तो उसका बढ़ा चढ़ा था।

पार्वती की तपस्या के प्रभाव से वह सारा वन पवित्र हो गया। नवीन पर्णशालाओं के भीतर अग्नि सदैव सन्दीप्त रहने लगी। गो-व्याघ्र आदि जन्म के वैरी जन्तुओं ने भी आपस का वैर-भाव छोड़ दिया। सब पास पास सुख से रहने लगे। अतिथियों का आतिथ्य करने के लिए वहाँ के पेड़-पौधे अनेक प्रकार के अभीष्ट फल-फूल उत्पन्न करने लगे।

पार्वती की यह तपस्या कुछ ऐसी वैसी न थी। वह बहुत ही कठोर और बहुत ही उग्र थी। परन्तु उसे इससे भी सन्तोष न हुआ। उसे यह सन्देह हुआ कि शायद ऐसी तपस्या से भी मेरे मनोरथ की सिद्धि न हो। अतएव उसने अपने शरीर की मृदुता की कुछ भी परवा न करके उससे भी अधिक उग्र

तप करना आरम्भ कर दिया। थोड़ी देर भी गेंद खेलने से जो थक जाती थी उसी पार्वती ने ऐसे तीव्र तप का प्रारम्भ किया कि जो बड़े बड़े मुनियों से भी नहीं हो सकता। अतएव यह अनुमान असङ्गत न होगा कि पार्वती का शरीर कनक के कमलों से बना हुआ था। इसीसे उसमें स्वाभाविक सुकुमारता और कठोरता दोनों ही थीं। यदि यह बात न होती तो कठोर शरीर वाले मुनियों से भी न हो सकने योग्य तप करने में वह किस तरह समर्थ होती।

जेठ-वैशाख में पार्वती ने अपने चारों तरफ़ आग जला दी और उन चारों अग्नि-कुण्डों के बीच में वह जा बैठी। अग्नि की बढ़ी हुई उस उष्णता से भी पीड़ा पहुँचने का कोई चिह्न उसने प्रकट न किया। नीचे पृथ्वी पर तो दहकती हुई आग के चार कुण्ड और ऊपर आकाश में तपता हुआ सूर्य। इस प्रचण्ड पञ्चाग्नि से सन्तप्त होने पर भी वह मुसकराती हुई अपनी जगह पर बैठी रही। यही नहीं, किन्तु सूर्य की नेत्रघातिनी प्रभा को जीत कर वह उस की तरफ़ इकटक देखती भी रही। जब तक सूर्यास्त नहीं हुआ तब तक वह बराबर उसी की तरफ़ देखती रही। फल यह हुआ कि सूर्य की ज्वाला-वाहिनी किरणों से उसका मुख बहुत ही तप गया और कमल के फूल के सदृश लाल होगया। एक बात यह भी हुई कि सूर्य की तरफ़ देखते रहने से उसकी आँखों के कोने, अर्थात् नेत्र-प्रान्त, धीरे धीरे काले पड़ गये। इतनी घोर तपश्चर्या करने पर भी अमृत-वर्षी चन्द्रमा की किरणों को छोड़ कर और किसी वस्तु को उसने न छुआ। हाँ, बिना माँगे ही यदि जल प्राप्त हो गया तो उसे अवश्य उसने पी लिया। बिना याचना के ही वृक्ष जिस तरह मेघोदक और चन्द्रकिरण के सहारे जीते रहते हैं, उसी तरह पार्वती भी उनके सहारे जीती रही। पीने के लिए किसी

से पानी तक देने की प्रार्थना उसने न की। मिल गया तो पी लिया, न मिला तो न सही।

ईंधन से प्रदीप्त चार और आकाशचारी सूर्यरूपी एक—इस तरह पाँच आगों से कृशाङ्गी पार्वती के अत्यन्त ही तप जाने पर वर्षा-ऋतु का आगमन हुआ। आषाढ़ लगने पर पहली वृष्टि हुई। उस नूतन वृष्टि का जल पार्वती पर भी पड़ा और पृथ्वी पर भी। पृथ्वी भी जल रही थी, पार्वती भी। इस कारण जल-वृष्टि होने पर पृथ्वी से भी भाफ निकली और पार्वती के शरीर से भी। वह भाफ दूर तक ऊपर आकाश की ओर चली गई। उस पहली वृष्टि के उदक-बिन्दु पार्वती की बरोनियों पर जो पड़े तो, उनकी सघनता के कारण, कुछ देर उन्हें वहीं रुकना पड़ा। वहाँ से चलने पर उन्होंने पार्वती के ओठों से टक्कर खाई। ओठ थे अत्यन्त कोमल। अतएव बूँदों की चोट से वे पीड़ित हो उठे। वहाँ से छुटकारा मिलने पर पार्वती के उरोजों पर गिरते ही वे चूर चूर हो गये। तदनन्तर उसकी त्रिवली की प्रत्येक रेखा को धीरे धीरे पार करके, बड़ी देर में, जो वे उसकी गहरी नाभि तक पहुँचे तो वहीं उसके भीतर ही न मालूम कहाँ लोप हो गये।

सावन-भादों का महीना है। रात का समय है। बिना थमे वृष्टि हो रही है। बिजली चमक रही है। हवा ख़ूब चल रही है। सब लोग अपने अपने घरों में आराम से सो रहे हैं। परन्तु ऐसे दुर्धर समय में पार्वती अपनी कुटी के भीतर भी नहीं गई। वह बाहर ही, खुली जगह में, एक शिला के ऊपर निश्चल बैठी रही। वृष्टि, वायु और बिजली की उसने कुछ भी परवा न की। उसकी उस घोर तपश्चर्य्या की गवाही देने ही के लिए वर्षा-ऋतु की रातों ने अपने बिजलीरूपी नेत्र खोल खोल कर मानों उसे बार बार देखा। उन्होंने शायद यह सोचा कि कोई

पूछेगा तो क्या कहेंगी । अतएव, आओ, देखें तो यह इस समय भी तपस्या कर रही है या नहीं ? डर कर कहीं कुटी के भीतर तो नहीं जा छिपी ?

वर्षा बीतने पर जाड़े आये । माह-पूस लगा । बर्फ़ गिरना आरम्भ हो गया । अत्यन्त ठण्डी हवा चलने लगी । हाथ से पानी छूना दुःसह हो गया । पर ऐसे जाड़ों में भी रात को पानी में बैठी हुई पार्वती, चकवा-चकवी के बिछड़े हुए जोड़े को, कृपा-दृष्टि से देखती रही । रात को अलग अलग हो जाने से वे पक्षी बड़े ही करुण-स्वर से एक दूसरे को पुकारते थे । उनकी उस कारुणिक पुकार को सुन कर पार्वती का हृदय द्रवीभूत हो गया । जिस जलाशय में बैठी हुई पार्वती तपस्या कर रही थी उसके कमल, तुषार-वृष्टि के कारण, सूख गये थे । अतएव वह कमलहीन हो चुका था । परन्तु उसमें प्रवेश करके पार्वती ने उसे अपने मुख से फिर भी कमलपूर्ण सा कर दिया । उसके मुख में कमल के प्रायः सभी गुण विद्यमान थे । उससे जो सुगन्धि निकल रही थी वह कमल ही की सुगन्धि के सदृश थी और उसके काँपते हुए ओंठ भी कमल के चलायमान पत्तों ही की तरह मालूम हो रहे थे ।

पेड़ों से पीले पीले पत्ते पुराने हो कर जो गिर पड़ते हैं उन्हीं को खाकर कोई कोई तपस्वी अपनी जीवन-रक्षा करते हैं । वे सिर्फ़ यही पत्ते चाब कर रह जाते हैं, और कोई चीज़ नहीं खाते । इस तरह पत्ते चाब कर ही रह जाना तपस्या की चरम सीमा समझी जाती है । परन्तु पार्वती ने इस चरम सीमा को भी तोड़ दिया—उसने उसका भी उल्लङ्घन कर दिया । उसने इस तरह के पुराने पत्ते भी न खाये । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, चन्द्रमा की शीतल किरणों के स्पर्श और बिना माँगे ही प्राप्त हुए जल के पान से ही उसने किसी तरह

अपने शरीर की रक्षा की। ऐसे जीर्ण पर्णों, अर्थात् पुराने पत्तों, का भी परित्याग करने ही के कारण मधुरभाषिणी पार्वती को पुराणों के ज्ञाता महात्मा अपर्णा कहते हैं। उसका अपर्णा नाम पड़ जाने का यही कारण है।

इस तरह दिनरात अत्यन्त तीव्र व्रतों के साधन से कमलिनी की नाल के सदृश अपने अत्यन्त कोमल अङ्गों को वह और भी दुबला करती चली गई। तपस्वियों के शरीर कठोर होते हैं। अतएव वे स्त्रियों की अपेक्षा अधिक श्रम और क्लेश सह सकते हैं। परन्तु कठिन शरीर वाले तपस्वियों से भी जो तपस्या नहीं हो सकती वह पार्वती ने कर दिखाई। उनकी तपस्या बड़े बड़े तपस्वियों की तपस्या से भी बढ़ गई।

ऐसी उग्र तपस्या करते करते बहुत समय बीत गया। तब एक दिन पार्वती के तपोवन में कहीं से अकस्मात् एक ब्रह्मचारी आया। उसके सिर पर बड़ी बड़ी जटायें थीं, हाथ में पलाश का दण्ड था, बगल में काले मृग का चर्म, अर्थात् मृगछाला, था। ब्रह्मतेज से वह जल सा रहा था। बोलने में वह प्रगल्भ, अर्थात् वाचाल, था। उसे देख कर यह मालूम होता था कि प्रत्यक्ष ब्रह्मचर्य्य-आश्रम ने ही उसके रूप में अवतार लिया है—वह मूर्तिमान ब्रह्मचर्य्य-आश्रम ही मालूम होता था। उसे आता देख पार्वती अपने आसन से उठ बैठी। अतिथियों का सम्मान करना वह खूब जानती थी। इस कारण अर्घ्य, पाद्य आदि की सामग्री लेकर वह कुछ दूर आगे चल कर उससे मिली और बड़े सम्मान से उसे अपने स्थान पर ले आई। पार्वती भी तपस्विनी थी और उसका अतिथि भी तपस्वी था। इस दृष्टि से दोनों समान ही थे: कोई किसी से कम न था। तथापि अपने स्थान पर आया जान पार्वती ने उसका आदर करना ही उचित समझा। बात यह है कि स्थिरचित्त महात्मा

विशेष विशेष व्यक्तियों का गौरव करने में अपना ही गौरव समझते हैं। उनके ऐसे आचरण से स्वयमेव उन्हीं का गौरव बढ़ता है।

पार्वती के द्वारा विधि-पूर्वक की गई पूजा-अर्चा को उस ब्रह्मचारी ने बड़े प्रेम से ग्रहण किया। आसन पर कुछ देर बैठने के बाद जब उसकी थकावट दूर हो गई तब उसने पार्वती से बात-चीत आरम्भ की। बात-चीत करने की जो परिपाटी सज्जनों की है उसी का उसने भी अनुसरण किया। वार्तालाप के समय न उसने कटाक्ष-पात किया और न अपनी भौंहे ही टेढ़ी कीं। बहुत ही सीधे सादे ढँग से वह बोला—

होम आदि यज्ञानुष्ठान के लिए समिधा और कुश तो यहाँ मिल जाते हैं न? स्नान, पूजन आदि के योग्य जल मिलने में तो कोई कठिनाई नहीं पड़ती? शक्ति के अनुसार ही तपस्या करती है न? शक्ति के बाहर कोई काम न करना चाहिए, क्योंकि धर्म का सब से बड़ा साधन शरीर ही है। उसकी रक्षा करना पहला कर्तव्य है। शरीर नीरोग और सबल रहने ही से धर्मानुष्ठान हो सकता है।

ये जो लतायें तेरे समाधि-मण्डप पर छाई हुई हैं और जिन्हें तू अपने ही हाथ से सींचा करती है वे अच्छी तरह हैं न? उनके पल्लव असमय ही में तो नहीं गिर जाते? यद्यपि बहुत दिन से तूने अपने अधरों पर लाक्षारस नहीं लगाया तथापि वे फिर भी लाल ही दिखाई दे रहे हैं। उनकी यह लालिमा स्वाभाविक है। इन लताओं के लाल लाल कोमल पल्लव तेरे अधरों की बराबरी सी कर रहे हैं। ये भी लाल और कोमल हैं और तेरे अधर भी लाल और कोमल हैं।

तेरे आश्रम में हरिणों की बहुत अधिकता है। वे निडर हो कर यहाँ मा करते हैं और अपने चञ्चल लोचन दिखा दिखा

कर मानों तुझ से यह कहा करते हैं कि देख, तेरी ही आँखें बड़ी बड़ी नहीं ; हमारी भी तेरी ही जैसी हैं । ये हरिण तुझ से इतने हिल गये हैं कि पूजा के कुश भी तेरे हाथ से छीन छीन कर खा जाते हैं । हे कमललोचनी ! उनके इस अपराध के कारण उन पर तू कभी अप्रसन्न तो नहीं हो जाती ? अप्रसन्न न होना चाहिए । अपराधियों को भी क्षमादान देना तपस्वियों का धर्म है ।

महात्माओं से मैंने सुना है कि जिनका रूप सुन्दर होता है उनसे कोई भी बुरा काम नहीं होता । पापाचरण से वे सदा ही दूर भागते हैं । यह कथन सर्वथा सच है । हे विशालनयनी ! तेरा शील-स्वभाव तो इतना उदार और उत्तम है कि बड़े बड़े ज्ञानी-विज्ञानी ऋषि-मुनि भी इस विषय में तुझ से शिक्षा ले सकते हैं । सुशीलता में तो तूने उन्हें भी मात कर दिया ।

गङ्गाजी का सलिल-समूह देवलोक से प्राप्त होता है । इस कारण उसकी पवित्रता किसी से छिपी नहीं । सप्तर्षि तक उसकी पूजा करते हैं और अपने हाथ से तोड़े गये फूल उस पर चढ़ाते हैं । वे फूल जब भगवती मन्दाकिनी की धारा में बहते हैं तब ऐसा मालूम होता है जैसे उनके बहाने वह हँस रही हो । ऐसी पुण्य-सलिला मन्दाकिनी तेरे पिता हिमालय ही पर बहती है । अतएव उसके सौभाग्य की क्या बात है ! परन्तु मन्दाकिनी की उस सप्तर्षि-पूजित धारा से भी तेरा पिता उतना पवित्र नहीं हुआ था जितना कि तेरे इन पवित्र चरितों और तपश्चरणों से पवित्र हुआ है । तू ने तो अकेले अपने पिता ही को नहीं, किन्तु उसके सारे वंश को भी पवित्र कर दिया ।

धर्म्म, अर्थ और काम—ये तीनों मिल कर त्रिवर्ग कहाते हैं । आज तेरा धर्म्मानुष्ठान देख कर मुझे ऐसा मालूम होता है

कि इस त्रिवर्ग में एक मात्र धर्म्म ही सब से अधिक महत्त्व-वाला है। वही इन तीनों का सार है। यदि ऐसा न होता तो अर्थ और काम से अपने मन को एक दम ही खींच कर उसे तू एक मात्र धर्म ही में क्यों लगाती। तू ने उसी को सर्वश्रेष्ठ समझा। इसी से उसका आश्रय लिया। यह बात मुझे आज मालूम हुई।

तू ने तो मेरा बहुत ही सत्कार किया। मैं तेरे इस आदर-सत्कार से कृतार्थ हो गया। मेरी प्रार्थना है कि तू अब मुझे परकीय न समझ। मैं अब ग़ैर नहीं रहा। हे नतगात्री! विद्वानों का कहना है कि दूसरे के साथ सात बातें हो जाने से ही परस्पर मित्रता हो जाती है। अतएव मेरे साथ तुझे अब मित्रवत् ही व्यवहार करना चाहिए। मैं तुझ से कुछ पूछना चाहता हूं। मैं द्विज हूं। और द्विज स्वभाव ही से वाचाल और चपल हुआ करते हैं। तू तपोधनी है। क्षमा तुझ में बहुत है। इस कारण मुझे विश्वास है कि तू मेरी इस वाचालता और ढिठाई के लिए मुझे क्षमा कर देगी और जो कुछ मैं पूछने जाता हूं वह, यदि गोपनीय नहीं तो, मुझे बता देगी। मैं यह जानना चाहता हूँ कि—

हिरण्यगर्भ नामक पहले प्रजापति के कुल में तो तेरा जन्म हुआ है। रूप तुझे इतना सुन्दर मिला है कि जान पड़ता है त्रिलोकी के सौन्दर्य ने तेरे ही शरीर का आश्रय लिया है। ऐश्वर्य की भी कुछ कमी नहीं। संसार के सारे सुख तुझे प्राप्त हैं। उम्र भी तेरी नई है। इस दशा में और किस वस्तु की प्राप्ति के लिए तू इतनी कठोर तपस्या कर रही है। कृपा करके बता तो, तू चाहती क्या है? मानवती नारियों का यदि कोई बहुत ही दुःसह अनिष्ट हो जाता है तो वे संसार से विरक्त होकर वन में रहने और तपस्या करने लगती हैं। परन्तु

जहाँ तक मेरी बुद्धि काम देती है, इस तरह का तेरा कोई अनिष्ट नहीं हुआ। फिर, हे कृशोदरी! तेरी इस तपस्या का कारण क्या है? यह भी तो सम्भव नहीं कि किसी ने तेरा अपमान किया हो। तेरी यह अलौकिक सौन्दर्यशालिनी मूर्ति भला अपमान-योग्य है। फिर, प्रतापी पिता के घर ऐसा हो भी तो नहीं सकता। किसी ने तेरे ऊपर हाथ चलाया हो या तेरा तिरस्कार किया हो, यह भी असम्भव है। हे सुन्दर भौंहों वाली! संसार में ऐसा कौन मूर्ख होगा जो काले नाग की मणि छीनने के लिए उसके सिर पर हाथ चलावेगा? तेरा यह यौवन-पूर्ण सुन्दर शरीर अच्छे अच्छे आभूषण पहनने योग्य है। तू ने उन्हें तो फेंक दिया है और पेड़ों की कर्कश छाल शरीर पर डाल रक्खी है। ऐसा वल्कल-वस्त्र बुढ़ापे में चाहे भले ही अच्छा लगे; तरुणावस्था में नहीं अच्छा लगता। मैं तुझी से पूछता हूं कि सायङ्काल जब पूर्ण चन्द्रमा भी उदित है और तारे भी चमक रहे हैं तब रात क्या कभी सूर्य्य के सारथि अरुण के दर्शनों की इच्छा कर सकती है? क्या कभी वह यह चाहेगी कि असमय में ही प्रातःकाल हो जाय? सायङ्काल यदि सूर्य्य का उदय युक्ति-सङ्गत माना जाय तो इस तरुण वय में तेरा जटाजूट और वल्कल धारण करना भी युक्ति-सङ्गत माना जा सकेगा।

यदि तू स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा से तप कर रही है तो यह तेरा सारा श्रम बिलकुल ही व्यर्थ है। स्वर्ग तो तुझे यों ही प्राप्त सा है। क्योंकि, देवभूमि तेरे पिता ही के देश में है, कहीं अन्यत्र नहीं। यदि पति-प्राप्ति की इच्छा से तूने समाधि लगाई है तो अब आज ही इसकी समाप्ति कर दे। इस इच्छा की पूर्ति के लिए तपश्चरण की क्या आवश्यकता? भला कहीं

रत्न भी ग्राहक को ढूंढ़ने जाता है ! ग्राहक तो स्वयं ही रत्न के पास आजाता है और उसका ग्रहण करता है।

पति शब्द का उल्लेख सुनते ही तू ने तो दीर्घ साँस ली। जान पड़ता है, तेरी तपस्या का यही कारण है। परन्तु मेरा मन नहीं मानता। मुझे तो फिर भी सन्देह हो रहा है। मुझे तो ऐसा एक भी पुरुष-रत्न नहीं दिखाई देता जिस की प्राप्ति के लिए तुझे प्रार्थना करनी पड़े। प्रार्थना करने पर भी जो तुझे न मिल सके, ऐसे पुरुष का होना तो त्रैलोक्य में भी सम्भव नहीं। कृपा करके मेरे इस सन्देह को दूर कर दे।

जब तू अपने कानों में कमल के कुण्डल पहनती थी तब वे तेरे कपोलों पर लटक कर उनकी शोभा बढ़ा देते थे। परन्तु जब से तू इस तपोवन में आई है तब से कमलों के कुण्डल तू ने नहीं धारण किये। अब तो उन कुण्डलों के बदले पके हुए धानों के रङ्ग की लम्बी लम्बी भूरी जटायें तेरे कपोलों पर लटक रही हैं। कमल-कुण्डल-शून्य तेरे कपोलों पर लटकी हुई इन जटाओं को देखकर भी जिस युवा को तुझपर दया नहीं आती उसका हृदय निस्सन्देह वज्र का है। अत्यन्त कठोर मुनि-व्रतों का साधन करते करते तूने अपने शरीर की दुर्गति कर डाली है। देख तो तू कितनी दुबली हो रही है। जहाँ पर तू सुन्दर सुन्दर आभूषण धारण करती थी वहाँ पर अब आभूषण तो नहीं, एक और ही हृदयदाहक दृश्य दिखाई दे रहा है। सूर्य की तीव्र किरणों से वह जगह काली पड़ गई है। वहाँ पर अब आभूषणों के बदले कालिमा दिखाई दे रही है ! हाय, हाय, तू तो इस समय दिन में उदित चन्द्रलेखा के समान कृश और मलिन हो रही है। तेरा यह हाल देख कर ऐसा कौन सचेतन मनुष्य होगा जिसका हृदय न विदीर्ण हो जाय ? जिसकी प्राप्ति के लिए तू इतना

घोर तप कर रही है वह न मालूम कैसा मनुष्य है। वह अपने सौन्दर्य पर अवश्य ही घमण्ड करता होगा। परन्तु उसे यह ख़बर नहीं कि उसका यह घमण्ड उसी के सौभाग्य का विघातक है। वह तो उसके साथ छल सा कर रहा है। अपने मुखावलोकन से चिरकाल तक तृप्त करने के लिए, कुटिल पलकों से युक्त तेरे इन सुन्दर दृष्टिवाले नेत्रों के सामने, उसे तुरन्त ही उपस्थित हो जाना चाहिए था। परन्तु तुझे दर्शन देना तो दूर रहा, उस कठोर-हृदय पुरुष ने तेरी सुध तक न ली। अतएव वह अवश्य ही बड़ा जड़ और मन्दभागी है।

शैलकुमारी! कब तक तू इस तरह घोर तप करती रहेगी? तुझे देख कर मुझको महादुःख हो रहा है। तू एक बात कर। ब्रह्मचर्य-आश्रम में मैंने भी बहुत सा तप किया है। वह सब अब तक सञ्चित है। उसका अर्द्धभाग मैं तुझे देता हूं। अपने और मेरे तप के बल से तू अपने वाञ्छित वर की प्राप्ति कर। परन्तु कृपा करके उसका नाम धाम तो बता दे। यदि वह तेरे योग्य होगा तो मैं भी उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में अपनी सम्मति दे दूंगा।

उस ब्रह्मचारी ने आश्रम में आकर पार्वती से जब ऐसी बातें कहीं तब वह यह सोचने लगी कि मैं इसके प्रश्न का कैसे उत्तर दूँ। यह ऐसी बात पूछ रहा है जिसका उत्तर देना कुलकन्याओं को उचित नहीं। अतएव स्वयं कुछ न कह कर उसने पास ही बैठी हुई अपनी सखी से, अपने कज्जलहीन नेत्रों द्वारा, इशारा कर दिया। आंख के इशारे ही से उसने ब्रह्मचारी की बात का उत्तर देने की प्रेरणा की। पार्वती की आज्ञा से उसकी सखी बोली—

ब्रह्मचारी जी, मेरी सखी की तपस्या का कारण सुनने के

लिए यदि आपका हृदय इतना कुतूहल-पूर्ण होरहा है तो सुन लीजिए। मैं आप से निवेदन किये देती हूँ कि यह क्या चाहती है। सूर्य की धूप से बचने के लिए कमल के फूलों का छाता नहीं लगाया जाता। परन्तु मेरी सखी ने कुछ ऐसी ही बात की है। जिस फल की प्राप्ति यह चाहती है वह कठिन शरीर-धारी तपस्वियों ही की तपस्या से प्राप्त हो सकता है। परन्तु इस ने उसी की प्राप्ति के लिए अपने इस अत्यन्त कोमल शरीर से तपस्या आरम्भ की है। उसका यह तप-साधन धूप-निवारण के लिए कमल-पुष्पों के छाते ही के सदृश है। मेरी मानिनी सखी महाऐश्वर्यशाली इन्द्र आदि दिक्पालों को भी कुछ न समझ कर पिनाकपाणि शिवजी को अपना पति बनाना चाहती है—उन शिवजी को जिन्होंने मनोभव का नाश कर दिया है; अतएव जो शरीर-सौन्दर्य्य द्वारा नहीं जीते जा सकते। कामवासना न होने से सुन्दर रूप उनको नहीं लुभा सकता—सुरूप-सौन्दर्य्य से उन्हे वशीभूत करना सम्भव नहीं। इसी से अपने सौन्दर्य को निष्फल समझ कर मेरी सखी तपश्चर्या द्वारा शिवजी को वशीभूत करने की चेष्टा कर रही है। इस बेचारी की दुर्दशा का मैं कैसे वर्णन करूँ। जिस समय पुष्पधन्वा ने शिवजी पर चढ़ाई की उस समय यह वहीं मौजूद थी। मनोभव के धनुष् से बाण छूटता देख शङ्कर के मुख से ऐसा 'हुङ्कार' निकला कि वह बाण उन तक पहुँचे बिना ही लौट गया। वह शिवजी तक तो न पहुँचा, वहीं खड़ी हुई मेरी सखी के हृदय के भीतर तक धंस गया। शिवजी के उस 'हुङ्कार' से उत्पात-निरत रति-पति तो वहीं जलकर ख़ाक हो गया। परन्तु उस जले हुए के भी उस शर ने इसके हृदय को जर्जर कर डाला। उस दिन से इसकी नींद-भूख जाती रही। पिता के घर में यह पागल की तरह दिन काटने लगी। वेणी बाँधना तक इसने छोड़ दिया।

इसके चन्दन-चर्चित ललाट पर सदा लटके रहने से इसके केश चन्दन-चूर्ण से परिपूर्ण होते रहे। फिर भी इसने उन्हें न सँभाला। इसके शरीर में इतना उत्ताप उत्पन्न हो गया कि बर्फ़ जमी हुई शिलाओं पर लेटने से भी उसकी शान्ति न हुई। जब यह बहुत व्याकुल हो जाती तब दूर, गहन वन में, चली जाती। वहाँ इसे आई देख किन्नरों की कन्यायें भी इसके पास आ जातीं। एकान्त में वहाँ यह पिनाकपाणि का चरित-कीर्तन कर के किसी तरह अपना मनोरञ्जन करना चाहती। परन्तु गाना आरम्भ करने पर इसका कण्ठ ऐसा रुँध जाता कि ठीक ठीक शब्द ही इसके मुख से न निकलते। इसकी ऐसी दयनीय दशा देख कर इसके पास बैठी हुई किन्नरों की कन्यायें भी रोने लगतीं।

इसे रात को नींद आना बन्द हो गया। रात के पहले तीन पहर इसे जागते ही बीतने। यदि चौथे पहर कुछ झपकी आ भी जाती तो इसे ऐसा भ्रम होता कि शिवजी अपना बाहुबन्धन मेरे कण्ठ में डाल रहे हैं। अतएव यह तत्काल जग पड़ती और कहती— "नीलकण्ठ! मुझे इस प्रकार धोखा देना बड़ी ही निर्दयता है। कहाँ जाते हो? क्षण भर तो अपने दर्शनों से मेरे नेत्रों को कृतार्थ करो"।

कभी कभी यह अपने कमरे में जाकर महादेव जी का चित्र खींचती। जब चित्र तैयार हो जाता तब चित्रगत शिवजी से कहती कि विद्वान् और ज्ञानी जन तो आप को सर्वव्यापी और सर्वज्ञ कहते हैं। फिर आप मेरे मन की बात क्यों नहीं जान लेते? मेरे हृदयस्थ भाव को जान कर भी मुझे इस प्रकार सताना क्या निष्ठुरता नहीं? इसी तरह मेरी यह मुग्धा सखी एकान्त में चन्द्रशेखर शङ्कर का उपालम्भ किया करती। बहुत दिन तक यह तीव्र सन्ताप सहती और गुरुतर दुःख पाती

रही। जब इसने देखा कि भगवान् भूत-भावन किसी तरह इसे नहीं मिल सकते तब यह पिता की आज्ञा से हम लोगों को साथ लेकर इस तपो-वन में चली आई और तपस्या करने लगी। इसने सोचा कि अब अपनी इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए इसके सिवा और कोई उपाय काम न देगा।

इसे यहाँ आये बहुत समय बीत गया। मानों अपनी तपस्या के साक्षी बनाने ही के लिए इसने अपने ही हाथ से इस आश्रम में जिन पेड़ों को लगाया था उनमें भी, देखिए, फल आने लगे। परन्तु शशिमौलि शङ्कर से सम्बन्ध रखने वाले इसके मनोरथ रूपी पौधे का अब तक चिह्न भी नहीं दिखाई दिया; उसके अङ्कुर तक का अब तक कहीं पता नहीं। उग्र तपस्या करने के कारण इसके इस कृश शरीर को देख देख कर हम लोग दिन रात रोया करती हैं। परन्तु मैं नहीं जानती, इतनी प्रार्थना और इतने धर्मानुष्ठान करने पर भी भगवान् शङ्कर को इस पर दया क्यों नहीं आती। प्रार्थना करने पर भी वे सर्वथा दुर्लभ हो रहे हैं। पानी न बरसाने से सन्तप्त हुए खेतों की भूमि को इन्द्र के सदृश, नहीं मालूम, कब वे इसे सन्तुष्ट करेंगे।

इस तरह पार्वती की सखी ने पार्वती के हृदय की बात साफ़ साफ़ कह दी। पार्वती के इशारे ही से वह समझ गई थी कि शैलजा इस ब्रह्मचारी से कुछ भी छिपाना नहीं चाहती।

सखी की पूर्वोक्त बातें सुनकर उस निष्ठावान् सुन्दर ब्रह्मचारी ने हर्ष के कोई लक्षण न प्रकट किये। मुख पर विकार के कोई चिह्न प्रकट किये बिना ही पार्वती से उसने सिर्फ़ इतना ही पूछा कि जो कुछ तेरी सखी ने कहा, क्या वह सच है? यह कहीं मुझसे परिहास तो नहीं कर रही?

ब्रह्मचारी का यह प्रश्न सुन कर शैल-सुता पार्वती ने स्फटिक की माला फेरना बन्द कर दिया। उसे उसने अपनी मुट्ठी के हवाले किया। फिर उसने मन ही मन कहा कि अब तक तो मैं चुपकी साधे रही। पर अब इनके प्रश्न का परिमित उत्तर देना ही पड़ेगा। यह निश्चय करके उसने दो चार शब्दों में ब्रह्मचारी के उस प्रश्न का इस प्रकार उत्तर दिया—

हे वैदिक-श्रेष्ठ! आप से इसने जो कुछ निवेदन किया सब सच है। मेरा यह अकिञ्चित्कर शरीर बहुत ही ऊँचे पदार्थ की प्राप्ति की कामना कर रहा है। उसे और किसी तरह प्राप्त न होता देख मैंने यह तपश्चरण आरम्भ किया है। वाञ्छित फल की महत्ता के सामने मेरा यह साधन अत्यन्त ही तुच्छ है। इससे उसकी प्राप्ति की बहुत कम सम्भावना है। तथापि दुराशा क्या नहीं कराती? उसके पाश में फंस कर मनुष्य अपनी शक्ति का सामर्थ्य भूल जाते हैं। बात यह है कि मनोरथों की गति सभी कहीं है। मन कहाँ नहीं जाता? वह सर्वत्र ही जा सकता है।

पार्वती की बात सुन कर ब्रह्मचारी बोला—

मैं महेश्वर को अच्छी तरह जानता हूँ। वही महेश्वर न, जो एक बार तेरे मनोरथ को रसातल पहुँचा चुके हैं! उन में तेरी प्रीति अब तक बनी हुई है? फिर भी तुझे उनकी चाह है? मुझे खेद है, मैं तेरे इस अनुचित काम का समर्थन नहीं कर सकता, क्योंकि जिनको तू चाहती है वे तेरे अनुरूप नहीं। क्या तू नहीं जानती कि उनके आचरण अत्यन्त ही अमङ्गल-मूलक हैं? तूने तो अविवेक की पराकाष्ठा कर दी। ऐसी तुच्छ वस्तु की प्राप्ति की इच्छा अविवेकियों के सिवा और कोई नहीं कर सकता। जान पड़ता है, तूने बिना ही सोचे समझे अशुभ-रूप शिव से विवाह करने का निश्चय किया है। यदि

उनके साथ तेरा विवाह हो गया तो तुझे बहुत बड़ी आपदायें भोगनी पड़ेंगी। तेरा कर-कमल तो वैवाहिक मङ्गलसूत्र से सजाया जायगा और तेरे प्रेमपात्र महादेव का कर काले भुजङ्गों के कड़ों से—उसीसे वे तेरा पाणिग्रहण करेंगे। उस समय उन विषधर साँपों की फुफकार से तेरी क्या दशा होगी, यह भी तूने नहीं सोचा। विवाहारम्भ के समय ही जब तुझ पर ऐसी बीतेगी तब आगे न मालूम और क्या क्या होगा। ग्रन्थि-बन्धन के समय तू तो बेलबूटेदार बड़ी ही सुन्दर रेशमी साड़ी पहनेगी और तेरे प्यारे पशुपति रुधिर टपकता हुआ हाथी का चर्म पहनेंगे। तू तो समझदार है। तू ही कह कि भला ऐसी सुन्दर साड़ी का संयोग क्या ऐसे वीभत्स गजचर्म से होने योग्य है? उनकी तो परस्पर गाँठ भी न दी जा सकेगी।

तेरे पिता का घर कैसा दिव्य है। उसके आँगन तक में फूल बिछे रहते हैं। उन्हीं फूलों के ऊपर जब तू महावर लगे हुए अपने कमल-कोमल चरणों से चलती रही है तब उस महावर के चिह्न उन पर बन जाते रहे हैं। परन्तु यदि तेरा विवाह भूतनाथ से हो गया तो तुझे उन्हीं पैरों से उस श्मशान-भूमि पर चलना पड़ेगा जहाँ मुर्दों की खोपड़ियाँ और मुर्दों ही के बाल बिखरे पड़े रहते हैं। मित्रों की तो बात ही नहीं, तेरे शत्रु भी कभी न चाहेंगे कि पिनाकपाणि का पाणिग्रहण करके तू बाल-बिछे-हुए श्मशान में घूमती फिरे। अभी तक तू अपने शरीर पर केसर, कस्तूरी और हरि-चन्दन का लेप लगाती रही है। परन्तु, यदि दुर्दैववश तू भुजङ्ग-भूषण की अर्द्धाङ्गिनी हो गई तो तुझे अपने हृदयस्थल को चिता की राख से कलुषित करना पड़ेगा। तू ही बता, इससे भी अधिक दुःख की बात और क्या हो सकती है?

यदि तू ने अपना आग्रह न छोड़ा और यदि महादेव के

साथ तेरा विवाह हो ही गया तो तेरी हँसी भी होगी। तू अल-ङ्कारों से सजे हुए हाथी पर चढ़ने योग्य है। परन्तु महादेव के साथ विवाह हो जाने पर वे तुझे अपने बूढ़े बैल पर चढ़ा कर अपने घर ले जायँगे। उस समय तुझे बैल पर बैठा देख, और तो क्या, समझदार सज्जन भी अवश्य ही हँस पड़ेंगे। क्या तुझे इस विडम्बना का भी डर नहीं? मेरी समझ में, शशाङ्कशेखर शङ्कर के समागम की प्रार्थना से संसार में दो चीज़ों की बड़ी ही शोचनीय दशा हो गई है। एक तो चन्द्रमा की उस कान्तिमती कला की, जिस ने शङ्कर के ललाट पर रहना स्वीकार किया है; दूसरी, सारे संसार के नेत्रों को आनन्द देनेवाली तेरी। जिस तरह कलाधर की वह कला अपने किये पर अब पछता रही है, उसी तरह तुझे भी पछताना पड़ेगा।

एक बात मेरी समझ में नहीं आती। वह यह कि महादेव में किस विशेषता को देख कर तू उनकी पत्नी बनना चाहती है। लोक में कन्या के विवाह का निश्चय करने के पहले वर में कम से कम तीन बातें देख ली जाती हैं—रूप, कुल और ऐश्वर्य। परन्तु महादेव के रूप का यह हाल है कि देखते ही डर लगता है। सब के दो ही आँखें होती हैं, उनके तीन हैं। रहा कुल, सो उनके माता-पिता तक का पता नहीं। वे कौन हैं, और कहाँ किसके घर पैदा हुए, यह भी कोई नहीं जानता। उनके धन और ऐश्वर्य का हाल तो उनका दिगम्बररूप ही पुकार पुकार कर बता रहा है। और चीज़ें तो दूर रहीं, लँगोटी तक उनके शरीर पर नहीं। हे मृगशावकलोचनी! फिर भला क्या देख कर तू त्रिलोचन पर मुग्ध हो रही है? वर में जो बातें देखी जाती हैं उन में से सब का होना तो दूर रहा, मुझे तो उन में एक भी नहीं दिखाई देती। अतएव तुझ से मेरी विनीत प्रार्थना है कि तू अपना मन्द मनोरथ छोड़ दे।

शङ्कर से विवाह करने के अनुचित अभिलाष को तुझे अपने हृदय से एकदम दूर कर देना चाहिए। कहाँ पुण्यशीला तू और कहाँ महा-अमङ्गलमूल महादेव ! तेरा उनका क्या साथ ! यज्ञों में पशु-बन्धन के साधनीभूत यूप-नामक काष्ठखण्ड की जो पूजा याज्ञिकों के हाथ से होती है, उसे श्मशान में शूली देने के लिए गाड़ा गया खम्भ नहीं पा सकता।

उस ब्रह्मचारी के मुख से निकले हुए ऐसे प्रतिकूल वचन सुन कर पार्वती की भौंहों में बल पड़ गया; आँखें लाल हो गईं; क्रोध के मारे ओठ फड़कने लगे। उससे न रहा गया। उसने नेत्रों को तिरछा करके उस ब्रह्मचारी की तरफ़ घृणा की दृष्टि से देखा। फिर उसे इस तरह फटकारना शुरू किया—

तुझे शङ्कर का सच्चा ज्ञान ही नहीं। तू उन्हें क्या जाने? यदि तुझे उन की सच्ची पहचान होती तो तेरे मुंह से ऐसे निन्दावाक्य कदापि न निकलते। महात्माओं के चरित अलौकिक हुआ करते हैं। उनकी बातें साधारण जनों की बातों से सदा ही भिन्न हुआ करती हैं। असाधारणता ही के कारण वे मन्दमतियों की समझ में नहीं आतीं। इसी से वे उनकी निन्दा करते हैं। विपत्ति से बचने की इच्छा रखने और ऐश्वर्य-भोग की कामना करनेवाले ही लोग गन्ध-माल्य आदि मङ्गलसूचक पदार्थों के पीछे पड़े रहते हैं। नाना प्रकार की आशाओं से कलुषित-बुद्धिवाले पुरुषों ही को उनका आश्रय लेना पड़ता है। मङ्गलमय भगवान् शङ्कर ऐसे नहीं। न उन्हें किसी विपत्ति से डर, न उन्हें सुख और ऐश्वर्य की इच्छा। फिर उन्हें क्यों ऐसी चीज़ों की परवा हो? सारा संसार तो स्वयं उन्हीं से ऐश्वर्य-प्राप्ति की कामना करता है और उन्हीं की शरण जाता है। यह तुझे मालूम ही नहीं। धनहीन होकर भी वही संसार को सारे धन और सारी संपदायें देते हैं। श्मशान में रह कर भी वही

तीनों लोकों का शासन करते हैं, क्योंकि त्रैलोक्य के स्वामी वही हैं। भयङ्कर-रूपधारी होकर भी कल्याणकारी शिव भी वही हैं। बात तो यह है कि उनके सम्बन्ध का सच्चा सच्चा ज्ञान किसी को है ही नहीं। ऐसे अलौकिक महिमामय महादेव का श्मशान में रहना, चिता-भस्म लगाना और बैल पर चढ़ना आदि क्या दोष में गिना जा सकता है? वे तो प्रत्यक्ष विश्वमूर्ति हैं। यह सारा संसार उन्हीं की मूर्ति के अन्तर्गत है। इस दशा में उन्हें कोई यह कैसे कह सकता है कि वे बहुमूल्य आभूषण पहने हुए हैं या साँप लिपटाये हुए हैं? गजचर्म धारण किये हुए हैं या बहुमूल्य रेशमी शाल ओढ़े हुए हैं? ब्रह्मकपालों की माला उन्होंने पहन रक्खी है या शीश पर चारु-चन्द्रमा की कला धारण कर रक्खी है? जो विश्वमूर्ति है उसकी मूर्ति के बाहर भी क्या कोई पदार्थ हो सकता है? संसार के सुन्दर सुन्दर पदार्थ क्या उसकी मूर्ति के अन्तर्गत नहीं? तू चिताभस्म को अपावन समझती है; परन्तु शङ्कर के अङ्गस्पर्श से वह इतनी पावन हो जाती है जिसका तुझे ज्ञान ही नहीं। ताण्डव-नृत्य के समय उनके शरीर से उस भस्म के जो कण गिर पड़ते हैं उन्हें इन्द्र आदि बड़े बड़े देवता भी उठा उठा कर अपने मस्तकों पर चढ़ाते हैं। फिर भी तू चिता भस्म को अशुद्ध ही समझती है? तेरी इस नासमझी को देखकर आश्चर्य होता है। अच्छा यही सही कि सम्पदाहीन होने के कारण ही वे बैल पर सवार होते हैं। परन्तु उन निर्धनी वृषभ-वाहन के प्रभाव की भी तुझे कुछ खबर है? मदस्रावी ऐरावत पर चढ़ने वाला इन्द्र उनके पैरों पर अपना सिर रगड़ता है और प्रफुल्ल मन्दार-पुष्पों की रज से उनकी अँगुलियों को लाल कर देता है।

जान पड़ता है, महात्माओं में दोष दिखाने की तेरी आदत

सी है। उसी नष्ट स्वभाव के कारण ही तू ने निर्दोष शिवजी में भी दोष ही दोष दिखाने की चेष्टा की है। तथापि दोष दिखाते दिखाते तेरे मुंह से एक बात सच भी निकल गई है। तू ने जो यह कहा कि महादेव जी के जन्म का भी ठिकाना नहीं, सो बहुत ही ठीक कहा। रे मन्दबुद्धि ! ब्रह्मा की भी उत्पत्ति जिन से हुई है उन अनादि-निधन भगवान् शङ्कर के जन्म का पता किसी को कैसे लग सकता है। जो समग्र विश्व की उत्पत्ति के कारण हैं उनकी उत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न तेरे सदृश अविवेकी ही कर सकते हैं।

अच्छा, तेरे साथ मैं विवाद नहीं करना चाहती। तू ने शङ्कर को जैसा समझ रक्खा है वैसा ही समझे रह। यदि वे वैसे ही हों तो भी चिन्ता नहीं। मेरा उन पर जैसा भाव है उसमें कदापि अन्तर नहीं आ सकता। जिस दृष्टि से मैंने उन्हें देखा है उसी दृष्टि से देखती रहूंगी। उनमें हज़ार दोषों का प्रतिपादन किये जाने पर भी मैं अपने निश्चय से च्युत नहीं हो सकती। मनमाना काम करनेवाले लोग गुण-दोषों की कदापि परवा नहीं करते। मैं स्वेच्छाचारिणी हूँ। अतएव लोकापवाद से मुझे रत्ती भर भी भय नहीं।

पार्वती की इस फटकार को सुन कर उस वाचाल ब्रह्मचारी ने फिर भी कुछ कहने का भाव प्रकट किया। इस बात को पार्वती ताड़ गई। वह समझ गई कि यह अपने प्रत्युत्तर में फिर भी भगवान् शङ्कर की निन्दा करेगा। अतएव उसके मुँह से और कुछ निकलने के पहले ही वह बोल उठी—

सखी, देख यह फिर भी कुछ बकवाद करना चाहता है, क्योंकि इसका ओंठ फड़क रहा है। इसे रोक दे। हरगिज़ यह अपने मुख से अब एक शब्द भी बाहर न निकाले। जो मन्दात्मा महात्माओं की निन्दा करते हैं वही पाप नहीं कमाते। उन

के मुख से निकली हुई निन्दा सुनने वाले भी पापभागी होते हैं। अतएव अब और अधिक कहने सुनने की कुछ आवश्यकता नहीं। अथवा मैं ही इसके पास से क्यों न उठ जाऊँ? लो, यह मनमाना प्रलाप करे, मैं जाती हूँ।

यह कह कर पार्वती उठ खड़ी हुई। क्रुद्ध होने और शीघ्रतापूर्वक उठने के कारण उसका वल्कल-वस्त्र अस्त व्यस्त हो गया। इसी दशा में अपना असली रूप धारण करके मुसकराते हुए भगवान् शशिशेखर ने उसे पकड़ लिया।

शङ्कर को देखते ही पार्वती थरथर काँपने लगी। उसका शरीर पसीने में डूब गया। चलने के लिए उठा हुआ उसका एक पैर वैसा ही उठा रह गया। रास्ते में बड़े भारी पहाड़ के सहसा आ जाने पर व्याकुल हुई नदी की जो दशा होती है वही दशा पार्वती की भी हुई। न वह वहाँ से चली ही जा सकी और न अच्छी तरह जम कर वहाँ खड़ी ही रह सकी।

चन्द्रमौलि महादेव ने पार्वती का हाथ पकड़ कर कहा—

हे नतगात्रि! आज से मैं तेरा क्रीतदास हुआ। अपनी तपश्चर्या से तू ने मुझे मोल ले लिया।

यह सुनते ही पार्वती का सारा तपोजन्य क्लेश दूर हो गया। बात यह है कि फल-प्राप्ति होने से उसके लिए उठाया गया क्लेश फिर नहीं ठहर सकता। वह समूल भूल जाता है और हृदय फिर हराभरा हो जाता है।

छठा सर्ग ।

पार्वती की मँगनी ।

इसके अनन्तर पार्वती अपने स्थान से हट गईं । उसने अपनी सखी को एकान्त में बुलाया और उससे कहा—"विश्वात्मा शिवजी के पास मेरा एक संदेशा पहुँचा दे । उनसे कहना कि मेरा दान यदि मेरे पिता ही के द्वारा हो तो बड़ी अच्छी बात हो, क्योंकि पिताही के द्वारा कन्यादान होना चाहिए । इससे लोक-रीति की रक्षा होगी । अनुग्रहपूर्वक आप ही इसका प्रबन्ध कर दीजिए" ।

यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं कि पार्वती शिवजी पर अत्यन्त अनुरक्त थी । अतएव, सखी के द्वारा यह सँदेशा भेजने से उस समय उसकी दशा आम की उस शाखा के सदृश हो गई जो कोकिला के कण्ठ-रव से वसन्त पर अपनी आसक्ति प्रकट करती है ।

सखी ने पार्वती की आज्ञा का पालन किया । वह शिवजी के पास गई और पार्वती का सँदेशा उन्हें कह सुनाया । शिवजी ने कहा—"बहुत अच्छा, मैं ऐसा ही प्रबन्ध करूँगा" । इतना कह कर वे वहाँ से चलने को उद्यत हुए । परन्तु पार्वती से दूर होने का ख़याल उन्हें सताने लगा । वहाँ से चले जाने को उनका मन न हुआ । ख़ैर, बड़े कष्ट से किसी प्रकार वे पार्वती के तपोवन को छोड़ सके । वहाँ से आकर उन्होंने अङ्गिरा आदि परम-तेजस्वी सप्तर्षियों का स्मरण किया । स्मरण करते ही सप्तर्षियों को मालूम

हो गया कि भगवान् शङ्कर हमें बुला रहे हैं। तत्काल ही उन्होंने अपने स्थान से प्रस्थान कर दिया। साथ में उन्होंने अरुन्धती को भी ले लिया। अपने प्रभा-मण्डल से आकाश को प्रकाशित करते हुए ये सातों तपोधनी ऋषि रवाना हुए। राह में उन्हें आकाश-गङ्गा की धारा बहती हुई दिखाई दी। उसमें स्नान करने के कारण दिग्गजों का मद गिर कर उसके जल में मिल गया था। इस कारण वह बहुत ही सुगन्धित हो गया था। किनारे किनारे लगे हुए कल्प-वृक्षों के कुसुम गिर गिर कर उसमें बहते चले जा रहे थे। उन्हें गङ्गा की लहरें इधर उधर फेंक रही थीं। कुसुम-राशि-पूर्ण और महासुगन्धित गङ्गा जी के ऐसे प्रवाह में ये सप्तर्षि रोज़ही स्नान करते थे। आज भी स्नान करके ये आगे बढ़े। इन ऋषियों के यज्ञोपवीत मोतियों के थे, वल्कल सोने के थे और जपमालिकायें रत्नों की थीं। इस कारण ये वानप्रस्थ आश्रम में वर्तमान कल्पवृक्षों के सदृश मालूम होते थे। इन्हें आता देख सहस्ररश्मि सूर्य ने ऊपर की ओर आँख उठाकर इन्हें सादर प्रणाम किया। इन ऋषियों की राह उस जगह से भी कुछ ऊपर थी जिस जगह से कि सूर्य का रथ जा रहा था। क्योंकि इनका मण्डल सूर्य के मण्डल से भी ऊँचा है। इस कारण सूर्य ने अपने अधोगामी रथ की पताका को कुछ झुका दिया। उसने कहा—ऐसा न हो जो यह ऊँची उठी हुई पताका सप्तर्षियों के मण्डल से टकरा जाय यही नहीं, किन्तु उसने अपने रथ को भी कुछ नीचे उतार दिया।

इन सप्तर्षियों की महिमा का वर्णन नहीं हो सकता। महा-प्रलय में भी ये बने रहते हैं। प्रलय-काल में महावराहजी पृथ्वी को अपनी डाढ़ों पर रख लेते हैं। तब ये भी वराहजी की डाढ़ों को हाथों से थाँभे हुए, पृथ्वी के साथ ही, उन पर बैठे रहते

हैं। ब्रह्माजी के अनन्तर अवशिष्ट सृष्टि की रचना इन्हीं के द्वारा होती है। इसी से प्राचीन इतिहास के ज्ञाता विद्वान् इन्हें पुराना ब्रह्मा कहते हैं। पूर्व जन्मों में इन्होंने जो बहुत ही तीव्र तप किया था उसी के विशद फल का इस समय ये भोग कर रहे हैं। यह इनके उस उग्र तप ही का प्रभाव है जो इनका स्थान स्वर्ग में इतना ऊंचा है। यद्यपि ये अपनी तपस्या का फल भोग रहे हैं, तथापि इनकी गिनती भोगियों में नहीं। ये फिर भी तपस्वी ही हैं। अब भी ये बराबर तप करते ही रहते हैं।

इन सप्तर्षियों में ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठजी भी थे। उनकी पत्नी अरुन्धतीजी भी उनके साथ थीं। वे अपने पति के पद-पद्मों पर दृष्टि गड़ाये हुए सप्तर्षियों के बीच इस तरह मालूम होती थीं जैसे उन सप्तर्षियों की तपःसिद्धि ही, अरुन्धतीजी के रूप में, उनके साथ चली आ रही हो।

ये सप्तर्षि क्षण ही भर में भगवान् महेश्वर के पास आकर उपस्थित हो गये। शिवजी ने जिस आदर की दृष्टि से सप्तर्षियों को देखा उसी से उन्होंने अरुन्धती को भी देखा। उन्होंने उन सबका एक ही सा गौरव किया। स्त्री समझ कर अरुन्धती के आदर में ज़रा भी कमी नहीं होने दी। यह पुरुष है, इस कारण इसका अधिक आदर करना चाहिए; यह स्त्री है, इस कारण इसका कम—इस प्रकार के विचार अविवेकियों ही के हृदय में स्थान पा सकते हैं। विवेकशील सज्जन इस तरह का भेद नहीं मानते। वे केवल सच्चरित्रता ही को देखते हैं। और, यही उचित भी है। साधुओं और महात्माओं का चरित्र ही देखा जाता है। उनकी साधुता और सद्वृत्ति ही की पूजा होती है।

अरुन्धती को देख कर दार-परिग्रह के विषय में शिवजी की इच्छा और भी प्रबल हो गई। पत्नी की प्राप्ति को उन्होंने पहले जितने आदर की चीज़ समझा था उससे भी अधिक आदर की

चीज समझा था उससे भी अधिक आदर की चीज़ उसे वे समझने लगे। बात यह है कि धार्मिक क्रियाओं का मूल कारण पत्नी ही है। पतिव्रता पत्नी मिलने से ही धर्मानुष्ठान अच्छी तरह हो सकता है।

पार्वती के विषय में शिवजी की इच्छा सर्वथा धर्मजन्य थी। यज्ञादि धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के लिए ही वे पार्वती के साथ विवाह करने को उद्यत हुए थे। अतएव उनकी इस प्रवृत्ति का कारण काम न था। यह देख कर अपने पूर्वापराध से भयभीत हुए मनोभव का मन उज्ज्वलित हो उठा। उसे यह आशा हुई कि अब मेरे पुनर्जीवन का अवसर आने में देर नहीं। क्योंकि शिवजी उसकी प्रेरणा से तो पार्वतीजी में अनुरक्त हुए ही न थे। इस कारण इसमें उस बेचारे का कुछ भी अपराध न था। और, विवाहोत्तर उसे सजीव किये बिना विवाह का उद्देश ही सिद्ध होने वाला न था। इसी से मनोभव ने कहा कि शिवजी अब मुझे अवश्य ही जिला देंगे।

शिवजी के सामने उपस्थित होकर महर्षियों ने उन्हें भक्ति-भावपूर्वक प्रणाम किया। फिर उनकी यथा-विधि पूजा भी की। इसके अनन्तर प्रीति से पुलक-पूर्ण होकर, साङ्ग वेदों के ज्ञाता उन ऋषियों ने इस प्रकार शिवजी की स्तुति आरम्भ की—

हम लोगों ने आज तक वेदों का जो विधिपूर्वक अध्ययन किया था, यज्ञों के जो विधिपूर्वक अनुष्ठान किये थे और कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रतों का जो विधिपूर्वक साधन किया था, उसका फल आज हमें मिल गया। हम आप के इस आह्वान से कृतार्थ हो गये। अपने वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान और तपश्चरण को आज हम सार्थक समझ रहे हैं। आप के द्वारा हम लोगों का इस तरह स्मरण किया जाना ही इस सार्थकता का कारण है। आप त्रिलोकी के नाथ हैं। आपके मनोदेश तक तो किसी के

मनोरथ की भी पहुँच नहीं हो सकती । परन्तु हमारे सौभाग्य को देखिए कि आप ने हमें अपने उसी मनोदेश में स्थान दे दिया । इसी से हम कहते हैं कि हमें अपने किये हुए सारे पुण्य-कार्यों का फल आज मिल गया । आप तो ब्रह्मदेव की भी उत्पत्ति के कारण हैं । ऐसे माहात्म्यशाली आप जिसके चित्त में वास करते हैं वह समस्त पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ समझा जाता है । परन्तु हम लोगों को आपने उलटा अपने ही चित्त में स्थान दे देने की कृपा की । इससे बढ़ कर हमारा सौभाग्य और क्या हो सकता है ? यह सच है कि हमारा स्थान सूर्य और चन्द्रमा के स्थान से भी ऊँचा है । तथापि हमारा स्मरण करके आपने हम पर जो अनुग्रह किया है उससे हमारा वह स्थान और भी ऊँचा होगया । आपके किये हुए इस सम्मान को हम बड़े ही महत्त्व की चीज़ समझते हैं । इस से हमारी प्रतिष्ठा और भी अधिक हो जायगी । क्योंकि महात्माओं के द्वारा किये गये आदर को लोग अत्यधिक विश्वास की दृष्टि से देखते हैं । जिसका आदर महात्मा करते हैं उसका सभी आदर करते हैं । महात्माओं की कृपा और अनुग्रह के कारण ही संसार में पूज्यता, प्रतिष्ठा और महत्ता की वृद्धि होती है । भगवान् विरूपाक्ष ! आपके द्वारा इस तरह स्मरण किये जाने के कारण हमें जितनी प्रसन्नता और जितना सन्तोष हुआ है उसे बताने की आवश्यकता नहीं । क्योंकि आपही देहधारियों की आत्मा हैं । अतएव आप तो उनके मन की भी बातें जान सकते हैं । फिर सर्वसाक्षी आपसे अपने मन की बात कहना सर्वथा अनावश्यक नहीं तो क्या है । आपको यद्यपि हम लोगों ने प्रत्यक्ष देख लिया है तथापि आपके तात्त्विक रूप से हम फिर भी अपरिचित ही हैं । नेत्रदृश्य रूप का ज्ञान प्राप्त कर लेने ही से आपके तात्त्विक रूप का ज्ञान नहीं हो सकता । अतएव

यदि आप ही अपने रूप निरूपण का क्लेश उठावें तो कृपा हो। आप का तात्त्विक रूप तो न मन ही से जाना जा सकता है और न बुद्धि ही से। हम यह बात जानने में सर्वथा असमर्थ हैं कि आप की यह दृश्यमान् मूर्त्ति कौन सी है। आप अपने तात्त्विक रूप के जिस अंश से इस चराचर प्रपञ्च की सृष्टि करते हैं क्या यह वही अंश है? अथवा वह है जिस से आप इस विश्व का पालन करते हैं? अथवा क्या यह आपका वह अंश तो नहीं जिससे आप इस विशाल विश्व का संहार कर देते हैं? असल बात क्या है, हम नहीं जानते। अस्तु। इस समय हम इस प्रश्न पर विशेष ज़ोर नहीं देना चाहते। इन बातों का जानना सहज भी नहीं। ये बड़ी ही गुह्य और दुर्ज्ञेय बातें हैं। अतएव इन्हें जाने दीजिए। आप ने हम पर बड़ी कृपा की जो हमें यहाँ उपस्थित होने की आज्ञा दी। अब कृपा करके कहिए, आपका आदेश क्या है। हम बुलाये किस लिए गये हैं?

सप्तर्षियों की बात का उत्तर देने के लिए महादेव जी ने जो अपना मुंह खोला तो उनके ललाटवर्ती चन्द्रमा की अल्प कान्ति अधिक हो गई। बात यह हुई कि शिवजी के विशद दाँतों की शुभ्र किरणों के संयोग से उस चन्द्रमा की पतली कला खूब चमक उठी। महादेवजी बोले—

आप लोगों को तो यह अच्छी तरह मालूम ही है कि मेरे कोई काम स्वार्थ से भरे हुए नहीं होते। मैं स्वार्थ-तत्पर नहीं। जो कुछ मैं करता हूँ परोपकार ही की दृष्टि से करता हूं। मेरे सारे काम परार्थ ही होते हैं। अग्नि, जल आदिक मेरी जो आठ मूर्तियाँ हैं उनसे ही आप मेरी इस परार्थ-प्रवृत्ति का हाल अच्छी तरह जान सकते हैं। यदि औरों के उपकार की मुझे चिन्ता न होती तो मैं इस तरह की ये आठ मूर्तियाँ क्यों प्रकट करता। इनसे मेरा कुछ भी काम नहीं होता; जो कुछ होता है

औरों ही का होता है। अतएव आप लोगों को बुलाने का कारण भी परोपकार ही है। शत्रुओं से पीड़ित देवताओं ने मुझ से यह प्रार्थना की है कि मैं एक पुत्र उत्पन्न करूँ। प्यास से व्याकुल हुए चातक जिस तरह जल-दान के लिए मेघ-मण्डल से प्रार्थना करते हैं उसी तरह शत्रुओं के उत्पात से तङ्ग आये हुए सुरों ने भी पुत्रोत्पत्ति के लिए मुझसे प्रार्थना की है। इस कारण सुत की उत्पत्ति के लिए मैं पार्वती को पाने की इस तरह इच्छा करता हूँ जिस तरह कि अग्नि की उत्पत्ति के लिए यज्ञ करने वाला यजमान अरणी नामक अग्नि-उत्पादक लकड़ी पाने की इच्छा करता है। अतएव आप कृपा करके पार्वती के पिता हिमालय के पास जाने का कष्ट उठाइए और उससे पार्वती को मेरे लिए माँगिए। आप की सहायता से यह काम अच्छी तरह हो सकता है। सत्पुरुषों को मध्यस्थ बना कर यदि विवाहादि सम्बन्ध किये जाते हैं तो उनमें किसी तरह की विघ्न-बाधा नहीं आती। ऐसे सम्बन्ध स्थिर होते हैं; उनसे कभी कोई बुराई नहीं पैदा होती। फिर एक बात और भी है। हिमालय की प्रतिष्ठा कुछ ऐसी वैसी नहीं। वह बहुत उन्नत है। इतनी बड़ी पृथ्वी का बोझ उसने उठा रक्खा है। अतएव ऐसे प्रतिष्ठित और गौरवात्मा गिरिराज से सम्बन्ध करने से मेरी प्रतिष्ठा में भी कुछ न्यूनता नहीं आ सकती। वह मुझसे सम्बन्ध करने के सर्वथा योग्य है। हिमालय के पास जाकर आप यह कहना, वह कहना, यह बताने की आवश्यकता नहीं। जिस तरह काम हो जाय, आप बात चीत कीजिएगा। बड़े बड़े पण्डित और महात्मा तक आप ही की निर्दिष्ट आचार-पद्धति का अनुसरण करते हैं। ये धर्मशास्त्र आप ही के तो बनाये हुए हैं। इसी से आप को सिखाना मैं व्यर्थ समझता हूँ। आपको जो उचित जान पड़े हिमालय से कहिएगा। आर्य्या अरुन्धती आप के साथ हैं, यह

और मँ अच्छी बात है। वैवाहिक बात चीत में ये भी आप की अच्छी सहायता कर सकती हैं। क्योंकि ऐसे विषयों में स्त्रियों की बुद्धि विशेष काम देती है। उन्हें ऐसे कामों के विषय में बात-चीत करना ख़ूब आता है। अतएव इस कार्य्य की सिद्धि के लिए हिमालय की राजधानी ओषधिप्रस्थ नामक नगर को आप अब प्रस्थान कीजिए। आप के लौट आने तक मैं यहीं महाकोशी नामक नदी के प्रपात के पास ठहरा रहूँगा। वहीं आप आ जाइएगा। वहीं मुझ से आप की भेंट होगी।

योगीश्वर महादेवजी को विवाह करने के लिए इस तरह उद्यत देख कर ब्रह्मा के तपस्वी पुत्र, वे ऋषि, मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। वे लोग घर-गृहस्थी वाले थे। उन्होंने विवाह भी किया था। विवाह कर लेना अब तक वे अपनी हीनता का कारण समझते थे। परन्तु उनका वह भाव इस समय दूर हो गया। उनके हृदय से लज्जा और सङ्कोच का भाव जाता रहा। उन्होंने मन ही मन कहा कि जब महादेवजी भी विवाह करना चाहते हैं तब हम लोगों का पत्नी-ग्रहण निन्दनीय नहीं माना जा सकता। इसके अनन्तर—"जो आज्ञा"—कह कर इधर तो सप्तर्षि उठ खड़े हुए, उधर शिवजी महाकोशी के प्रपात पर चले गये।

महादेवजी से बिदा होकर वे लोग खड्ग के समान नीले आकाश में उड़ गये। उनके उड़ने के वेग ने मन के वेग को भी मात कर दिया। पलक मारते ही वे ओषधिप्रस्थ नगर में जा पहुँचे। यह नगर बड़ा ही अद्भुत था। सब लोग कुबेर की नगरी अलकापुरी की बड़ी प्रशंसा करते हैं; उसे धन-धान्यों और सम्पदाओं की खान समझते हैं। परन्तु ऋषियों ने हिमालय की राजधानी को उससे भी बढ़ कर पाया। उसे देख कर उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानों वह दूसरा स्वर्ग-लोक ही है।

कभी तो उनके मन में यह विचार हुआ कि स्वर्ग का सार खींच कर यह नगरी बसाई गई है, कभी यह कि स्वर्ग को उजाड़ कर ही किसी ने उसे यहाँ बसा दिया है। उन्होंने देखा कि ओषधिप्रस्थ नगरी गङ्गा के प्रवाहों से घिरी हुई है। वे प्रवाह ही खाई का काम दे रहे हैं। दुर्ग के भीतर बस्ती में, स्थान स्थान पर, प्रकाशवती ओषधियाँ अपनी अपार दीप्ति फैला रही हैं। इस कारण रात को भी वहाँ की सड़कों और गलियों के किनारे किनारे लैम्प जलाने की ज़रूरत नहीं। बड़ी बड़ी मणियों और महामूल्यवान् रत्नों से वह परिपूर्ण है। स्वाभाविक दुर्ग के भीतर छिपी रहने पर भी उस की शोभा और समृद्धि किसी तरह छिप नहीं सकती। वहाँ के हाथी बड़े बड़े विकराल सिंहों से भी नहीं डरते। घोड़े वहाँ ऐसे अद्भुत हैं कि वैसे और कहीं देखे ही नहीं गये। यक्ष और किन्नर ही वहाँ वास करते हैं। स्त्रियों के बदले वनदेवियाँ ही वहाँ रहती हैं। नगरी के महल इतने ऊँचे हैं कि उनके कँगूरे मेघ-मण्डल को छू रहे हैं। इस कारण उन महलों में जब मृदङ्ग बजते हैं तब उनकी ध्वनि मेघों से टकरा कर ऐसी प्रतिध्वनि पैदा करती है मानों मेघ ही गर्जना कर रहे हैं। ताल और लय का विचार करने ही से यह पता चल सकता है कि ये मेघ नहीं गरज रहे, मृदङ्ग बज रहे हैं। वहाँ अनन्त कल्पवृक्ष हैं। उनकी हिलती हुई डालियों पर वहाँ के निवासी बहुधा अपने वस्त्र टाँग देते हैं। जब वे वायु से हिलते हैं तब ऐसा मालूम होता है जैसे लोगों ने अपने अपने घरों में पताकायें गाड़ रक्खी हों और वही लहरा रही हों। ये कल्पवृक्ष ही ऊँची उड़ती हुई पताकाओं का काम देते हैं। अतएव वहाँ वालों को अपने अपने घरों में ध्वजा-पताकायें गाड़ने का श्रम नहीं उठाना पड़ता। मद्य-पान करने के जो स्थान इस नगरी में हैं वे सब स्फटिक के हैं। रात के समय तारों

और नक्षत्रों के प्रतिबिम्ब उनमें ऐसे दिखाई देते हैं जैसे उन्हों-ने मोतियों की मालायें पहन रक्खी हों। प्रकाशवती ओषधियों के कारण वहाँ की गलियों में रात को भी प्रकाश ही बना रहता है। इस कारण स्त्रियों को अँधेरे के कभी दर्शन भी नहीं होते। चाहे जितने घने मेघ छाये हों—चाहे जैसा दुर्दिन हो—वे बड़े आराम से अपने अपने इच्छित स्थान को चली जाती हैं। हिमा-लय की नगरी में वृद्धावस्था की पहुँच ही नहीं; सभी लोग सदा युवा बने रहते हैं। मृत्यु भी वहाँ किसी को नहीं आती; सभी लोग अमर हैं। कभी किसी की चेतनता का थोड़ी देर के लिए भी नाश नहीं होता। याचना का भी वहाँ सर्वथा अभाव है। किसी वस्तु की कमी न होने के कारण वहाँ कभी किसी को याचना ही नहीं करनी पड़ती। हाँ, कुपित हो जाने पर मान-वती स्त्रियों को लोग कभी कभी मनाते अवश्य हैं। जब वे स्त्रियाँ भौंहें टेढ़ी करके, ओंठ फड़का कर और तर्जनी उँगली उठा कर अपना रोष प्रकट करती हैं तब उनके प्रेमी उनकी प्रसन्नता की प्राप्ति की याचना अवश्य करते हैं। इसी को यदि कोई याचना समझे तो समझ सकता है। इस नगरी के बाहर बहुत ही सुन्दर सुगन्धि फैलाने वाला गन्धमादन नामक एक उपवन है। वह बहुत विस्तृत है। उसके भीतर लम्बी लम्बी रविशें हैं। उनके किनारे किनारे सन्तानक नामक कल्पवृक्ष लगे हुए हैं। वन-विहार करते करते जब विद्याधर लोग थक जाते हैं तब उन्हीं की शीतल छाया में पड़े सोया करते हैं।

हिमालय की ऐसी अद्भुत राजधानी को देख कर वे दिव्य ऋषि चकित हो गये। उन्हें यह ख़याल हुआ कि वेदों में स्वर्ग की जो इतनी महिमा गाई गई है और उसकी प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों की जो विधि बताई गई है वह केवल लोगों को धोका देने के लिए है। उस स्वर्ग से तो यह

आराधप्रस्थ नामक नगरी हज़ार गुना अच्छी है। वेदों को चाहिए था कि वे स्वर्ग की झूठी प्रशंसा न करके इस नगरी की प्रशंसा करते।

इस प्रकार मन में सोचते हुए वे लोग आकाश-मार्ग से हिमालय के महलों के ऊपर पहुंच गये। द्वार पर बैठे हुये द्वारपालों ने ऊपर आँख उठा कर उन्हें बड़े वेग से नीचे उतरते देखा। परन्तु भीतर जाने से मना करने का उन्हें साहस न हुआ। अतएव चित्र में लिखी गई अग्नि की ज्वाला के समान लाल लाल निश्चल जटायें धारण किये हुए उन ऋषियों ने हिमालय के महलों के भीतर पैर रक्खा।

आकाश से उतर कर उन सातों ऋषियों ने हिमालय के महलों के भीतर एकही साथ प्रवेश किया। जो ऋषि सब से अधिक वृद्ध था वह सबके आगे हुआ। जो उम्र में उससे कम था वह उसके पीछे। इसी तरह छुटाई बड़ाई के लिहाज़ से वे एक दूसरे के आगे पीछे चलने लगे। उस समय ऐसा मालूम हुआ जैसे पानी के भीतर दूर तक पड़े हुए सूर्य के प्रतिबिम्ब लहराते मालूम होते हैं। उन परमपूज्य ऋषियों को आता देख हिमालय अपने आसन से उठ बैठा। अर्घ आदि की सामग्री झटपट हाथ में ले कर उन्हें लाने के लिए वह आगे बढ़ा। जिस समय उठ कर उसने पृथ्वी पर पैर रक्खा उस समय उसके अत्यन्त भारी और बलिष्ठ शरीर को साधने वाले उसके पैरों के बोझ से पृथ्वी दबने सी लगी। आहा, हिमालय सचमुच ही हिमालय था। उसे आता देख सप्तर्षि तत्काल उसे पहचान गये। लाल रङ्ग के धातु ही उसके ओंठ थे। देवदार के ऊंचे ऊंचे वृक्ष ही उसके आजानु-लम्बी बाहु थे और बड़ी बड़ी स्वाभाविक शिलायें ही उसकी छाती थी। अथवा यह कहना चाहिए कि लाल लाल धातुओं के समान ही उसके ओंठ

लाल थ। देवदार के ऊंचे ऊंच वृक्षों के सदृश ही उसकी भुजायें लम्बी थीं और पर्वत की विशाल शिलाओं के समान ही उसका उरो-देश चौड़ा था। इसी से उसकी इस स्वाभाविक विशाल आकृति को देखते ही ऋषियों ने उसे पहचान लिया।

हिमालय ने बड़े प्रेम से उन सप्तर्षियों की यथाविधि पूजा की। फिर स्वयं ही मार्ग बताता हुआ उनको वह अपने अन्तः-पुर में ले गया। जब वे विशुद्ध-चरित ऋषि अन्तःपुर में पहुंच गये तब उन्हें बेत की बुनी हुई सुन्दर कुर्सियों पर उसने बिठाया। उनके बैठ जाने पर वह भी उन्हीं के पास बैठ गया। सर्व-समर्थ ऋषियों के कुछ देर विश्राम कर लेने पर उसने कृताञ्जलि-पूर्वक इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

मैं अपने सौभाग्य की कहाँ तक प्रशंसा करूं। आपके इस अतर्कित दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। आपका इस प्रकार अक-स्मात् दर्शन देना मैं बिना मेघ की वर्षा अथवा बिना फूल आये ही फल के समान समझता हूं। मुझे तो कुछ ऐसा मालूम हो रहा है कि आपके इस अनुग्रह से मूढ़ मैं ज्ञानी सा होगया, लोह-शरीरधारी मैं सोने का सा बन गया और भूमिचारी मैं स्वर्ग लोक पर चढ़ सा गया! आपकी इस कृपा की बदौलत मैं अपने को आज कृतकृत्य समझ रहा हूं। आपने तो मुझे इतना पावन कर दिया कि मैं तीर्थ की पदवी को पहुंच गया। जहाँ पर साधु महात्माओं के पैर पड़ते हैं उसी का नाम तो तीर्थ है। तीर्थ क्या आसमान से टूट पड़ते हैं? अतएव आप के अनुग्रह से मैं अब औरों को भी पवित्र और शुद्ध करने के योग्य होगया। आज से सांसारिक जन अपनी शुद्धि के लिए मेरा भी आश्रय लेंगे। हे द्विजोत्तम! दो ही चीज़ों से मैं अपनी आत्मा को पवित्र हुआ मानता हूँ। एक तो, गङ्गाजी की धारा से, जो मेरे सिर पर गिरती है। दूसरे, आपके धोये हुए

चरणों के उदक से। आप के चरणोदक और मन्दाकिनी के प्रवाह, इन्हीं दोनों ने मेरी आत्मा की मलिनता को दूर किया है।

मेरे दो रूप हैं। एक तो पर्वतात्मक स्थावररूप, दूसरा यह जङ्गमरूप जो आपके सामने उपस्थित है। मेरे ये दोनों ही रूप आज कृतार्थ होगये। क्योंकि आपने अपने अनुग्रह को इन दोनों ही में बराबर बराबर बाँट दिया—दोनों ही पर आपने एक सी कृपा की। अपने पावन पद रख कर तो आपने मेरे स्थावर रूप को पवित्र कर दिया और उन पदों की सेवा करने का अवसर देकर मेरे इस जङ्गमरूप को पवित्र कर दिया। यद्यपि मेरा शरीर छोटा नहीं, बहुत बड़ा है। यहाँ तक कि मेरे अङ्ग दिगन्त तक फैले हुए हैं। तथापि आपके इस अनुग्रह को देखकर मुझे जो सन्तोष और जो सुख हुआ है वह इतना अधिक है कि मेरे अत्यन्त विस्तृत अङ्गों में भी नहीं समा सकता।

परम-तेजस्वी आपके दर्शनों से मेरी गुहाओं के भीतर घुसा हुआ ही तम नहीं नष्ट हो गया; मेरे अन्तःकरण का भी तम दूर हो गया। रजोगुण-सम्बन्धी मेरा अज्ञान तो उसी समय जाता रहा था जिस समय आपने मेरे घर में पैर रक्खा था। अपने पाद-स्पर्श करने की सेवा लेकर तो आपने उस आभ्यन्तरिक अज्ञानरूपी अन्धकार का भी नाश कर दिया, जो रजोगुणात्मक तम के स्थान से भी बहुत आगे रहता है। सूर्य आदि जितने तेजस्क पिण्ड हैं उनसे बाहरी तम का नाश होता है, भीतरी का नहीं। भीतरी तम के नाश की शक्ति तो आपही में है।

आप सर्वसमर्थ हैं। आपके लिए संसार में कुछ भी करणीय नहीं। निर्लोभी महात्माओं को परवा ही किस बात की हो सकती है? और यदि किसी वस्तु की इच्छा हो भी तो वह

उन्हें सदा ही सुलभ रहती है। क्योंकि ऐसी कोई वस्तु ही नहीं जो उन्हें न मिल सकती हो। अतएव इस सन्देह के लिए जगह ही नहीं कि आप अपने किसी कार्य की सिद्धि के लिए मेरे पास पधारे हैं। मैं तो यही समझता हूँ कि मुझे पवित्र करने ही के लिए आपने मुझे दर्शन देने की कृपा की है। तथापि कोई न कोई आज्ञा तो आप मुझे अवश्य ही दें। मैं आपका दास हूं, और आप मेरे स्वामी हैं। सेवा लेने और आज्ञा देने ही से स्वामी के प्रसाद और अनुग्रह का हाल सेवक को मालूम हो सकता है। स्वामि-भाव की सफलता इसी में है कि दास से कुछ काम लिया जाय। मैं स्वयं आपकी सेवा के लिए हाज़िर हूँ। मेरी रानी भी हाज़िर है। मेरे कुल की जीवन-मूल यह कन्या भी हाज़िर है। हममें से यदि कोई भी आप की कुछ सेवा कर सके तो मैं अपने को धन्य समझूंगा। रही और बाहरी वस्तुओं—धन, धान्य, रत्नादिक—की बात, सो वे तो अत्यन्त ही तुच्छ हैं। उन्हें तो मैं सदा ही लुटाया करता हूँ।

हिमालय के मुख से निकले हुए ये वचन उसकी गुफाओं के भीतर तक चले गये। उनसे जो प्रतिध्वनि हुई उसने मानों हिमालय के वचनों को दुहरा कर और भी पक्का कर दिया।

सप्तर्षियों में अङ्गिरा ही अग्रणी थे। संसार में जितने उदाहरणीय गुण हैं उनकी चर्चा चलने पर सबसे पहले अङ्गिरा ही का नाम लिया जाता है। अतएव अपने में सब से अधिक प्रतिष्ठित इन्हीं को समझकर अवशिष्ट छः ऋषियों ने हिमालय की बात का उत्तर देने के लिए उन्हीं से कहा। वे बोले—

आपने जो कुछ कहा, उचित कहा। हमें तो आप से इस से भी अधिक की आशा है। जितने उन्नत आपके शिखर हैं उतना ही उन्नत आपका मन भी है। उन्नति में ये दोनों ही

समान हैं। भगवान् विष्णु का वचन है—"स्थावराणां हिमालयः" । यह बहुत ठीक है। आप सचमुच ही स्थावररूप विष्णु हैं। देखिए न, आपके पेट में स्थावर और जङ्गम सभी का वास है। जैसे विष्णु की कुक्षि स्थावर और जङ्गम, दोनों ही प्रकार की, सृष्टि को आधारभूत है वैसी ही आप की कुक्षि भी है। अतएव आपको विष्णु कहना सर्वथा युक्त है। यदि आप रसातल तक इस पृथ्वी को दृढ़तापूर्वक न पकड़े रहते तो बेचारा शेष अपने मृणालमृदु फणों पर इसे कभी न धारण कर सकता। आप ही की सहायता से वह यह दुस्तर काम कर रहा है। अन्यथा उसके फन बात की बात में कुचल जाते। आपकी विशुद्ध कीर्त्ति जिस तरह तीनों लोकों को पवित्र करती है उसी तरह आपकी नदियाँ भी पवित्र करती हैं। आपकी कीर्ति दिगन्तव्यापिनी है। समुद्र की ऊंची ऊंची लहरों से भी वह नहीं रुकती। उनका भी उल्लङ्घन करके वह सागर के पार चली जाती है। आपसे निकली हुई नदियाँ भी समुद्र में निश्शङ्क प्रवेश कर जाती हैं। लहरों की रोकी वे नहीं रुकतीं। जिस तरह आपकी कीर्ति की धारा अटूट और निर्मल है उसी तरह आपकी नदियों की भी है। अत्यन्त पवित्र होने के कारण इन दोनों ही से त्रिलोक का एक सा कल्याण होता है। संसार में गङ्गाजी की जो इतनी प्रशंसा है उसका पहला कारण तो यह है कि वह विष्णु के चरणों से निकली है, और दूसरा यह है कि वह आपके ऊंचे ऊंचे शिखरों के ऊपर गिरती है। अतएव विष्णु के चरणों और आपके शिखरों की महिमा एक ही सी है।

एक प्रकार से तो आपकी महिमा विष्णु भगवान् की महिमा से भी अधिक है। देखिए न, वामनावतार में त्रिविक्रम विष्णु की मूर्ति कुछ ही देर तक ऊपर, नीचे, आगे, पीछे

सर्वत्र व्यापक हुई थी। पर आपकी मूर्ति तो सदा ही दूर दूर तक व्याप्त रहती है। व्यापकता तो आप में स्वाभाविक है। अतएव इस दृष्टि से तो आप विष्णु से भी बढ़ गये हैं। क्योंकि आपकी व्यापकत्व-विषयक महिमा नित्य सिद्ध है। जितने पर्वत हैं किसी को भी यज्ञभाग नहीं मिलता। परन्तु आपके माहात्म्य का यह हाल है कि इन्द्र आदि बड़े बड़े देवताओं के बीच बैठ कर आप यज्ञभाग लेते हैं। आप को इस प्रकार यज्ञभाग प्राप्त करते देख लोगों को सुमेरु के सोने के शिखर व्यर्थ ही मालूम होते हैं। माहात्म्य में आप उससे भी बढ़ कर हैं। सुमेरु सुवर्ण का हुआ तो क्या हुआ। जो आदर सम्मान और माहात्म्य आपका है वह उसका नहीं।

आपने अपनी सारी कठिनता तो अपने पर्वतात्मक स्थावर शरीर को दे दी है और नम्रता अपने इस जङ्गम रूप को। सज्जनों की पूजा-अर्चा के लिए ही आपने ऐसा भक्तिनम्र जङ्गम रूप धारण किया है।

हम लोग अपने किसी निज के काम के लिए नहीं आये; आप ही के काम के लिए आये हैं। काम भी ऐसा वैसा नहीं। वह बहुत ही कल्याणजनक और पुण्यप्रद है। उससे हमारा निज का तो कुछ लाभ नहीं। परन्तु तत्सम्बन्धी उपदेश से कुछ पुण्य हम लोगों को भी अवश्य ही होगा। सुनिए, हमारे आने का कारण यह है—

अर्द्धचन्द्रधारी भगवान् शिव का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। आप स्वयं ही उन्हें अच्छी तरह जानते हैं। अणिमादिक जितने ऐश्वर्य हैं, सभी उनको प्राप्त हैं। इसी से वे ईश्वर कहाते हैं। 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग एक मात्र उन्हीं के विषय में सार्थक है। इस व्यापक विश्व में और कोई पुरुष ईश्वर कहलाने का अधिकारी नहीं। उन्होंने अपनी आत्मा को

आठ जगह बाँट दिया है। पृथ्वी, जल, अग्नि आदि उन्हीं की मूर्तियाँ हैं। मार्ग में जिस तरह रथ को घोड़े धारण करते हैं उसी तरह सर्व-समर्थ शिवजी भी अपनी इन आठों मूर्तियों के द्वारा इस चराचर विश्व को धारण कर रहे हैं। विश्व-धारण में उनकी इन मूर्तियों को किसी और की सहायता भी नहीं लेनी पड़ती। वे अपने ही पारस्परिक सामर्थ्य से एक दूसरे को सहायता पहुंचाती हैं; क्योंकि उनका परस्पर आधाराधेय भाव है। यदि इन आठ मूर्तियों के सहारे परम-ऐश्वर्यशाली महेश्वर इस संसार का भार वहन न करते तो वह अपनी वर्तमान स्थिति में एक दिन भी न रह सकता।

भगवान् शङ्कर पञ्च-महाभूतों में व्यापक हैं। चर और अचर, सभी में उनकी आत्मा वास करती है। वे परमात्म-स्वरूप और सर्वान्तर्यामी हैं। इसी से बड़े बड़े योगी अपने हृत्कमल में उन्हें खोजते रहते हैं। विद्वानों का वचन है कि शिवजी के स्थान की प्राप्ति होने और उन तक पहुँचने से जन्म-मरण का नाश हो जाता है। जिन्होंने उन्हें पा लिया वे इस भवसागर से सदा के लिए पार हो गये।

सभी सांसारिक कर्मों के साक्षी—भले बुरे सभी कामों का हिसाब-किताब रखने वाले—वही महामहिम महेश्वर आप से आपकी कन्या माँगते हैं। स्वयं ही बड़े से बड़ा वर देने की शक्ति रख कर भी आपसे कन्यारूपी वरदान पाने का वे अभिलाष रखते हैं। इसी लिए उन्होंने हम लोगों को आप के पास भेजा है। हमारी इस प्रार्थना को आप साक्षात् शिवजी की की हुई प्रार्थना समझिए। अतएव अर्थ के साथ वाणी की तरह आप अपनी कन्या का संयोग उनके साथ कर दीजिए। पिता का कर्तव्य है कि वह अपनी कन्या का विवाह

उसके अनुरूप किसी सर्वगुण-सम्पन्न वर से करे। ऐसा करने ही से पिता अपनी कन्या के ऋण से उऋण हो सकता है और उसे यह देख कर सदा सन्तोष होता है कि मैंने कन्या का विवाह अच्छे घर में कर दिया। भगवान् शङ्कर के साथ विवाह करने से आपकी कन्या भी सदा सुख से रहेगी और उसे सुखी देख आप भी सुखी होंगे। आप जानते ही हैं कि महादेव जी संसार के पिता हैं। अपनी सुता पार्वती का विवाह उन से यदि आप कर देंगे तो वह सारे संसार की माता हो जायगी। स्थावर और जङ्गम सभी उसे अपनी माता समझेंगे। यही नहीं, महादेवजी की पत्नी होजाने पर, इन्द्रादि बड़े बड़े देवता भी, भगवान् नीलकण्ठ को प्रणाम करने के अनन्तर, आपकी कन्या के चरणों पर मस्तक रक्खेंगे। उस समय उनकी चूड़ामणियों की किरणों से आपकी सुता के चरणों की शोभा ख़ूब ही बढ़ जायगी। उमा जैसी सर्वगुण-सम्पन्न वधू, आप जैसे शीलवान् दाता, हम जैसे माँगने वाले ऋषि, भगवान् मृत्युञ्जय जैसे ऐश्वर्यशाली वर—देखिए तो आपके कुल की मर्यादा बढ़ानेवाली कैसी एक से एक बढ़ कर सामग्री इकट्ठी हुई है। इस सम्बन्ध से आपका कुल भी उन्नत और वन्दनीय हो जायगा। स्वयं आपकी भी मर्यादा बहुत बढ़ जायगी। त्रिलोकीनाथ शिवजी ने आज तक और किसी की स्तुति नहीं की। उलटा यह सारा संसार उन्हीं की स्तुति करता है। इसी तरह आज तक किसी के सामने उन्हें सिर नहीं झुकाना पड़ा। बड़े बड़े दिक्पाल देवता तक उन्हीं के पैरों पर अपना सिर रखते हैं। यदि आप अपनी सुता का सम्बन्ध उन से कर देंगे तो आप जगद्गुरु शङ्कर के भी गुरु हो जायंगे। आपके सौभाग्य का क्या कहना। जिसने आज तक न तो किसी की स्तुति की और न किसी के सामने सिर ही झुकाया वही आपको

अपना श्वशुर जान आप की स्तुति भी करेगा और आपके सामने सिर भी झुकावेगा !

जिस समय हिमालय से सप्तर्षि इस प्रकार कह रहे थे उस समय पार्वती पिता के पास चुपचाप खड़ी थी और हृदय में उत्पन्न हुए हर्ष को, लज्जा के कारण, लीला-कमल की पखुरियाँ गिनने के बहाने छिपा रही थी ।

पर्वतराज हिमालय ने महादेवजी के साथ अपनी कन्या का विवाह कर देना यद्यपि पहले ही से निश्चित कर रक्खा था, तथापि उसने इस विषय में मेना की सम्मति भी ले लेना उचित समझा । इसी से सप्तर्षियों की बात समाप्त होते ही उसने मेना की तरफ़ देखा । बात यह है कि कन्या के विवाहादि विषयों को कुटुम्बी गृहस्थ अपनी गृहिणी ही की आँखों से देखते हैं । ऐसे मामलों में बिना पत्नी की सम्मति के वे कोई काम नहीं करते ।

पति को अपनी तरफ़ आँखें उठाते देख मेना समझ गई । उसने कहा—

बहुत अच्छी बात है । भगवान् शङ्कर से बढ़ कर वर और कहाँ मिलेगा । अतएव मेरी सम्मति में तो आपको यह सम्बन्ध करने में कुछ भी आगा-पीछा न करना चाहिए ।

मेना पतिव्रता थी और पतिव्रता स्त्रियाँ कभी अपने पति के प्रतिकूल कोई काम नहीं करतीं । वे पति के मन की बात जान कर सदा ही तदनुकूल व्यवहार करती हैं । इसी से मेना ने इस विषय में अपने पति की इच्छा का अनुसरण किया ।

मेना की सम्मति मिल जाने पर हिमालय ने सोचा कि किस तरह सप्तर्षियों की बात का उत्तर देना चाहिए । फिर उसने माङ्गलिक अलङ्कारों से अलङ्कृत पार्वती का हाथ पकड़ लिया । उसने मन में कहा कि इसे इसी समय दे डालना

ऋषियों की बात का सब से अच्छा उत्तर होगा। अतएव पार्वती का हाथ पकड़ कर उसने कहा—

बेटी, इधर आ। विश्वात्मा शिव मुझ से तेरी भिक्षा माँगते हैं। माँगने के लिए जगन्मान्य और परमपूज्य ये ऋषि आये हैं। मेरे लिए इससे बढ़ कर पुण्य और क्या हो सकता है? मैं तो यह समझता हूं कि मुझे आज गृहस्थाश्रम का यथेष्ट फल मिल गया।

यह कह कर हिमालय ने सप्तर्षियों की तरफ़ देखा। फिर वह उन से बोला—

यह कन्या आप को नमस्कार करती है। इसे आप आज ही से त्रिलोचन की वधू समझिए।

अपनी प्रार्थना फलवती हुई देख ऋषियों ने हिमालय के औदार्य्य की बड़ी बड़ाई की। फिर उन्होंने बहुत ही शीघ्र फल देने वाले आशीर्वचनों से जगदम्बिका पार्वती को प्रसन्न किया। ऋषियों के दिये हुए आशीर्वचनों को सुन कर पार्वती ने बड़े ही भक्तिभाव से भगवती अरुन्धती को प्रणाम किया। उस समय पार्वती अपने कानों में सुवर्ण-कमलों के कुण्डल पहने थी। प्रणाम करते समय वे अरुन्धती जी के सामने गिर पड़े। अरुन्धती ने सलज्जा पार्वती को अपनी गोद में बिठा लिया और बड़े प्रेम से उसके मस्तक पर हाथ फेरा।

मेना ने शिवजी के साथ अपनी सुता के विवाह की अनुमति तो दे दी। परन्तु यह सोच कर कि अब यह मुझ से छूट जायगी, उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े। सुता के स्नेह ने उसे विकल कर दिया। परन्तु जब उसने शिवजी के गुणों का स्मरण किया और यह सोचा कि उनके साथ विवाह होने से मेरी कन्या का सौभाग्य अखण्ड रहेगा और उसे सपत्नि-

सम्बन्धी दुःख भी कभी न भोगना पड़ेगा तब उनकी विकलता दूर हो गई।

हिमालय ने सप्तर्षियों से प्रार्थना की कि महाराज, विवाह की तिथि भी लगे हाथ बताते जाइए। इस पर उन्होंने कहा कि तीन दिन बाद बड़ी अच्छी लग्न है। वही ठीक रखिए। यह कह कर वल्कलधारी वे ऋषि वहाँ से चल दिये।

हिमालय से विदा होकर सप्तर्षि पलक मारते ही महाकोशी नदी के उस प्रपात पर आ पहुँचे जहाँ बैठे त्रिशूली शङ्कर उनकी राह देख रहे थे। उनको प्रणाम करके ऋषियों ने कहा—"काम हो गया। आज के चौथे दिन विवाह की लग्न ठहरी है।" यह सुनकर शिवजी ने उन्हें प्रसन्नतापूर्वक विदा किया और वे आकाशमार्ग से अपने स्थान को लौट गये।

पशुपति शङ्कर के लिए ये तीन दिन युग के हो गये। उनके हृदय में शैलेश-सुता पार्वती के समागम की उत्कण्ठा इतनी बढ़ गई कि बड़ी कठिनता से उनके ये तीन दिन किसी तरह बीते। योगिराज शिवजी के सदृश जितेन्द्रिय महात्माओं का जब यह हाल है तब ऐसे मामलों में यदि और लोगों के मन क्षुब्ध हो उठें तो आश्चर्य की कोई बात नहीं।

सातवाँ सर्ग ।

पार्वती का विवाह ।

निश्चित मुहूर्त पर हिमालय ने पार्वती के विवाह का पहला संस्कार-कर्म्म बन्धु-बान्धवों सहित किया। उस समय चन्द्रमा शुक्लपक्ष का था। तिथि भी शुभ थी और वार भी शुभ था। विवाह की जो लग्न ठीक हुई थी वह जामित्र नामक योग से युक्त थी। लग्न से जो स्थान सातवाँ होता है उसी की जामित्र-संज्ञा है। वह भी शुद्ध था। ऐसे शुभ मुहूर्त में विवाह-सम्बन्धी कार्य का प्रथ-रम्भ हुआ। हिमालय इतना प्रजारञ्जक था कि उसके घर में नी कन्या का वैवाहिक मङ्गलानुष्ठान आरम्भ हुआ देख, वासियों ने भी अपने अपने घरों में मङ्गलकार्य आरम्भ कर या। जितनी पुरवासिनी स्त्रियाँ थीं सभी माङ्गलिक-कार्य-म्पादन में लग गईं। सब कहीं मङ्गल होता देख ऐसा मालूम ने लगा जैसे हिमालय का अन्तःपुर और उसके नगर में रहने ले लोगों के घर एक ही आदमी के हों। सारा नगर एक ही र के सदृश मालूम होने लगा। हिमालय के अन्तःपुर में जैसा हल-पहल और मङ्गल हो रहा था वैसा ही प्रत्येक पुरवासी भी घर में होने लगा। इसी से मङ्गल-कार्य्य-सम्पादन के म्बन्ध में हिमालय और पुरवासियों के अन्तःपुरों में कुछ भी न रह गया।

जितनी सड़कें और जितने रास्ते थे सब पर फूल बिछ बहुमूल्य वस्त्रों की पताकायें सर्वत्र फहराने लगीं। सब

कहीं सुवर्ण के तोरण और बन्दनवार अपनी समुज्ज्वल दीप्ति फैलाने लगे। इन बातों से ऐसा मालूम होने लगा जैसे सुमेरु-पर्वत के ऊपर से उठा कर किसी ने स्वर्ग ही को वहाँ ला थमाया हो। हिमालय की राजधानी ओषधिप्रस्थ नगर की शोभा स्वर्ग की शोभा की समता करने लगी।

यह जान कर कि अब पार्वती हमसे बिछुड़ जायगी, उसके माता-पिता के हृदय बहुत ही स्नेहातुर हो उठे। यद्यपि उनके और भी सन्तति थी तथापि उमा उस समय सब से अधिक प्यारी मालूम होने लगी। खो जाने के बाद बहुत दिनों में मिली हुई अथवा मृत्यु को प्राप्त होकर फिर जी उठी हुई सन्तति पर माता-पिता का प्रेम जैसे बहुत ही अधिक हो जाता है वैसे ही हिमालय और मेना का प्रेम पार्वती पर बहुत अधिक हो गया। पार्वती के माता-पिता ही के नहीं, किन्तु उसके कुल के और लोगों के प्रेम का भी यही हाल हुआ। हिमालय के बन्धु-बान्धवों के भी पुत्र और पुत्रियाँ थीं। उनका प्रेम अपनी सन्तति में बँटा हुआ था। तथापि उस समय उस समग्र प्रेम ने एकत्र होकर पार्वती ही का आश्रय लिया। हिमालय के बान्धवों ने पार्वती को बारी बारी से अपनी गोदी में बिठाया और उसे आशीर्वाद दिया। एक से छूटते ही दूसरे ने उसे उठा लिया। किसी ने एक प्रकार के शृङ्गार से उसके किसी अङ्ग को अलङ्कृत किया, तो दूसरे ने किसी और ही शृङ्गार से उसके दूसरे अङ्ग को। सभी ने उसके शृङ्गार और प्यार की पराकाष्ठा कर दी।

चन्द्रमा के साथ उत्तर-फाल्गुनी नक्षत्र का योग होने पर जब मैत्र मुहूर्त्त आया तब हिमालय के बन्धुओं की पति-पुत्र-वाली सौभाग्यवती स्त्रियों ने पार्वती के तेल, उबटन इत्यादि लगाना आरम्भ किया।

सफ़ेद सरसों का उवटन तैयार किया गया। फिर उसमें कोमल कोमल नवीन दूर्वादल डाल कर उसकी शोभा की वृद्धि की गई। वही उवटन पार्वती के लगाया गया। नाभि के ऊपर तक कौशेय नामक सुन्दर रेशमी वस्त्र उसे पहनाया गया। क्षत्रियों का मङ्गल-सूचक वाण उसके हाथ में दे दिया गया। यह शरीराभ्यङ्ग यद्यपि उसकी शरीर-शोभा की वृद्धि के लिए किया गया, तथापि पार्वती के सुन्दर शरीर के योग से उलटा उसी की शोभा हुई। विवाह-संस्कार के साधक लोहे के उस नवीन वाण के संयोग से वाला पार्वती की शोभा बहुत ही बढ़ गई। शुक्लपक्ष के आरम्भ में सूर्य के किरण-समूह के योग से चन्द्र-रेखा जैसे अधिक सुन्दर मालूम होती है, वैसे ही उस वाण के सम्पर्क से पार्वती भी अधिक सुन्दर मालूम होने लगी।

इसके अनन्तर पार्वती के शरीर पर तेल लगाया गया। फिर लोध नामक ओषधि के चूर्ण का खौर किया गया। उससे शरीर पर लगा हुआ तेल जहाँ का तहाँ सूख गया। तदनन्तर कालेयक नामक एक सुगन्धित पदार्थ का कुछ गीला, कुछ सूखा, लेप लगाया गया। फिर स्नानोपयोगिनी धोती उसे पहनाई गई। यह सब हो चुकने पर स्त्रियाँ उसे स्नान-घर में ले गईं। स्नान-घर बहुत ही सुन्दर था। वहाँ वैदूर्य-मणियों की पटियाँ जड़ी हुई थीं। उन पटियों में जगह जगह पर बड़े ही अनोखे ढँग से मोती पच्ची किये हुए थे। ऐसे स्नान-घर में पार्वती की दासियाँ ज्योंही उसे सोने के घड़ों में भरे हुए जल से स्नान कराने लगीं त्योंही बाहर माङ्गलिक बाजे बजने लगे। इस प्रकार मङ्गल-स्नान करने से पार्वती का शरीर जब अच्छी तरह विमल हो गया तब उसे वर के घर से आई हुई सुन्दर साड़ी पहनाई गई। उस समय पार्वती मेघों के जलाभिषेक से

पवित्र हुई, प्रफुल्ल काश-कुसुमों से सुशोभित, पृथ्वी की उपमा को पहुँच गई ।

वहाँ से पतिव्रता स्त्रियाँ पार्वती को थाम कर उस जगह ले गईं जहाँ मणियों के चार खम्भों के सहारे एक बहुत ही सुन्दर चँदोवा तना हुआ था। उसके नीचे माङ्गलिक वेदी बनी हुई थी। उस पर सुन्दर आसन पड़ा था। उसी आसन पर उन कुलकामिनियों ने पार्वती को पूर्व-मुख बिठा दिया। फिर वे सब उस कृशाङ्गी के सामने बैठ गईं। उस समय पार्वती के अपूर्व सौन्दर्य और अलौकिक रूप को देख कर उन्हें अपने तन मन की सुध ही न रही। पार्वती के शृङ्गार की सारी सामग्री यद्यपि उनके पास ही रक्खी थी तथापि उसकी तरफ़ दृक्पात भी न करके कुछ देर तक वे पार्वती को इकटक देखती रहीं। जब वे पार्वती को अच्छी तरह देख चुकीं तब उन्होंने उसका शृङ्गार आरम्भ किया। उस समय तक भी पार्वती का अङ्ग गीला था। इस कारण पहले तो उन स्त्रियों ने सुगन्धित धूप की ऊष्मा से उसका गीलापन दूर किया। फिर उसके केशों में उन्होंने फूल गूँथे। तदनन्तर एक सौभाग्यवती सुन्दरी ने दूब पिरोई हुई महुओं की सफ़ेद माला से पार्वती के बाल समेट कर अच्छी तरह बाँध दिये। यह हो चुकने पर पीले पीले पवित्र गोरोचना में अगुरु नामक सफ़ेद सुगन्धित वस्तु मिलाई गई। उससे पार्वती के शरीर पर अनेक प्रकार के बेलबूटों की रचना की गई। रेत पर बैठे हुए पीले पीले चक्रवाक पक्षियों से गङ्गा जितनी अच्छी मालूम होती है, उन पीले पीले बेलबूटों और चित्र-विचित्र पत्र-रचनाओं के योग से पार्वती उससे भी अच्छी मालूम होने लगी।

उस समय पार्वती के मुख पर पड़ी हुई दो एक लटों से उसके मुख की सुन्दरता ने बड़ी ही विचित्रता धारण की।

भ्रमरों से युक्त कमल और मेघमाला से युक्त चन्द्रमा भी कुछ कुछ ऐसा ही मालूम होता है। परन्तु पार्वती के अलकलग्न मुख की शोभा ने इन दोनों ही की शोभा को परास्त कर दिया। अतएव पार्वती के अलकलग्न मुख की उपमा वैसे कमल और वैसे चन्द्रमा से देने की चर्चा तक चलाने का प्रसङ्ग जाता रहा।

पार्वती के कपोलों पर पहले तो लोध के चूर्ण का लेप किया गया। फिर उन पर अरुणाभ गोरोचना छींटा गया। तदनन्तर हरे हरे जवों के नवीन अङ्कुरों के लच्छे उसके कानों में खोंसे गये। कपोलों पर लटके हुए जव के उन अङ्कुरों ने पार्वती के मुख के सौन्दर्य को इतना बढ़ा दिया कि पास बैठी हुई स्त्रियाँ कुछ देर तक उन्हें निर्निमेष देखती रह गईं।

पार्वती का जो अङ्ग जैसा चाहिए था वह वैसा ही था। और अङ्गों की तरह उसके ओंठ भी बड़े ही सुन्दर थे। ओंठों के बीच की रेखा से उनकी सुन्दरता और भी अधिक हो गई थी। उसके ओंठ स्वभाव ही से लाल थे। पिघले हुए मोम की कुरहरी जो उन पर फेरी गई तो उनकी लालिमा और भी विमल हो गई। मोम लगाते समय वे फड़क उठे। उनकी उस समय की शोभा का वर्णन सर्वथा असम्भव है। फड़क कर मानों उन्होंने शीघ्र ही होने वाली, अपने लावण्य-फल की प्राप्ति की शुभ सूचना कर दी।

और अङ्गों का शृङ्गार हो चुकने पर, पार्वती की एक सखी ने उसके पैरों पर महावर लगाया। लगा चुकने पर, पार्वती के एक पैर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देने के बहाने उसे पार्वती का परिहास करने की सूझी। वह बोली—"पार्वती, भगवान् करे तू इसी पैर से अपने पति की सिरवाली चन्द्रकला को छुवे!" यह सुखद परिहास सुन कर पार्वती मुँह से तो कुछ न

बोली। पर पास ही रक्खी हुई फूलों की एक माला फेंक कर उसने उसे मारा।

जब पार्वती के सुन्दर सरोज-सदृश नेत्रों के रञ्जन का समय आया तब उन्हें देखकर सखियों ने कहा कि भला, ऐसे मनोहर और स्वभावसुन्दर नेत्रों में काजल लगाने की क्या आवश्यकता है। काजल से न तो इनकी कान्ति ही अधिक हो सकती है और न सुन्दरता ही। ख़ैर, काजल लगाना मङ्गल का चिह्न है। अतएव, लाओ लगा दें। यह सोचकर उन्होंने पार्वती की आँखों में काजल लगा दिया।

और सब शृङ्गार हो चुकने पर गहने पहनाने का समय आया। जब उसे पद्मराग और इन्द्रनील आदि मणियों के गहने पहनाये गये तब वह अनेक रङ्ग के सुमन-समूहों से लदी हुई लता सी मालूम होने लगी। बड़े बड़े मोतियों के हार पहनाये जाने पर उसकी शोभा उदित तारों और नक्षत्रों से चमकती हुई रात के समान हो गई। सोने के सुन्दर सुन्दर आभूषण पहनाने पर वह ऐसी मालूम होने लगी जैसी पीले पीले चक्रवाक पक्षियों से संयुक्त सरिता मालूम होती है।

वस्त्राभूषणों से सज चुकने पर पार्वती के सामने दर्पण रक्खा गया। उसमें अपने अपूर्व रूप-लावण्य को देखकर पार्वती क्षण भर चकित हो गई। निश्चल लोचनों से वह अपने सुन्दर रूप को बड़ी देर तक देखती रही। तदनन्तर मन में उसने कहा कि अब शीघ्र ही शङ्कर की प्राप्ति हो जाय तो अच्छा। बात यह है कि स्त्रियाँ शृङ्गार आदि से अपने सौन्दर्य को जो बढ़ाती हैं वह सिर्फ़ इसीलिए कि उसे देखकर उनके प्रेमी प्रसन्न हों। प्रेमी की दृष्टि पड़ जाना ही शृङ्गार करने और वस्त्र-आभूषण पहनने का एक मात्र फल है।

इस प्रकार पार्वती के तैयार हो जाने पर उसकी माता मेना

उठो। कान में पहने हुए पात या पत्ते नामक अलङ्कार से सुशोभित, पार्वती के मुख, को उसने अपने हाथ से कुछ ऊंचा उठाया। फिर माङ्गल्यसूचक गीले हरताल और मैनसिल को मिला कर उसने पार्वती के ललाट पर विवाह-संस्कार-सम्बन्धी तिलक कर दिया। इस तिलक को तिलक न कहना चाहिए। जब से पार्वती कुछ बड़ी हुई तभी से उसके हृदय में शिवजी की अर्द्धाङ्गिनी बनने का जो सब से पहला मनोरथ उदित हुआ था, उसी मनोरथ की मूर्ति इसे समझना चाहिए।

पार्वती को विवाहोचित वेश में देख कर मेना की आँखे आनन्द के आँसुओं से परिपूर्ण हो गईं। इस कारण मङ्गल-सूचक ऊन की राखी को जो वह पार्वती के हाथ में बाँधने लगी तो उसे कहीं की कहीं बाँध दिया। ठीक जगह पर न बाँधा। अश्रुपूर्ण दृष्टि होने के कारण उसे पार्वती का हाथ ही ठीक ठीक न दिखाई दिया। यह दशा देख पार्वती की धात्री ने उस राखी को अपनी अँगुलियों से खिसका कर ठीक जगह पर कर दिया।

नवीन और दिव्य रेशमी साड़ी पहने और हाथ में नवीन आरसी धारण किये हुए पार्वती बहुत ही सुशोभित हुई। वह उस समय सफ़ेद फेन के पुञ्ज से पूर्ण क्षीरसागर की तट-भूमि के सदृश्य, अथवा पौर्णमासी के चन्द्रमा से युक्त शरत्काल की रात के सदृश, मालूम होने लगी।

पार्वती की माता मेना कुल-कर्म में बहुत निपुण थी। अतएव वस्त्रालङ्कारों से अलङ्कृत हो चुकने पर, अपने कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली पार्वती को, वह, परम्परा से पूजी गई घर की कुल-देवियों के पास ले गई। उनके सामने ले जाकर उसने पार्वती से कहा—"बेटी! इन्हें प्रणाम कर"। इस पर पार्वती ने भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। इसके अनन्तर वहाँ पर जो

जितनी हो बड़ी बूढ़ी पतिव्रतायें उपस्थित थीं उन्हें भी प्रणाम करने के लिए मेना ने पार्वती को आज्ञा दी। पार्वती के प्रणाम करने पर उन नारियों ने उसे आशीर्वाद दिया—"तुझ पर पति का प्रेम सदा अखण्डित रहे; तू अपने पति की प्यारी हो"। परन्तु उमा ऐसी उस्ताद निकली कि उसने इन प्रसन्नमुखी पतिव्रताओं के आशीर्वाद-फल से भी अधिक फल प्राप्त कर लिया। उसने पति का अखण्डित प्रेम ही न प्राप्त किया, किन्तु पति के आधे शरीर की वह स्वामिनी भी बन बैठी।

हिमालय के घर धन सम्पत्ति की कुछ भी कमी न थी। इस कारण पार्वती के विवाह में उसने खूब ही जी खोलकर खर्च किया। अपनी इच्छा के अनुसार सारा कार्य सम्पादन करके वह सभा में आया और शिवजी के आगमन की राह देखने लगा। हिमालय के बन्धु-बान्धव और अन्य मिहमान पहले ही से वहाँ बैठे थे। कार्यकुशल और सभ्य-शिरोमणि हिमालय के आ जाने पर सभा की कुछ और ही शोभा हो गई।

कैलास-पर्वत पर महादेवजी के यहाँ का भी कुछ हाल अब सुन लीजिए। उनके घर में कोई स्त्री तो थी ही नहीं। इस कारण ब्राह्मी आदि सप्तमातृकाओं ही को विवाह की सामग्री एकत्र करनी पड़ी। उन पराभूत मातृकाओं ने विवाह-सम्बन्धिनी सब मङ्गल-सामग्री लाकर शिवजी के सामने रख दी। मातृकाओं के गौरव के लिहाज़ से—उन्हें प्रसन्न करने के लिए शिवजी ने उस सामग्री को हाथ से छू तो अवश्य दिया। परन्तु उस से और कोई काम लेना उन्होंने उचित न समझा। उन्होंने कहा—जो चीज़ें मेरे शरीर के लिए प्रति दिन दरकार होती हैं उन्हीं से वैवाहिक वेश-कल्पना करनी होगी। मुझे और माङ्गलिक वस्तुओं से कुछ भी प्रयोजन नहीं। अतएव उन्होंने भस्म ही का अङ्गराग लगाया—शुभ्र वर्ण की भस्म ही

ने उनके लिए गन्धानुलेपन का काम दिया। सिर पर कोई आभूषण न धारण करके अमल कपाल ही से उन्होंने उसकी शोभा बढ़ाई। गजचर्म के चारों तरफ़ थोड़ा थोड़ा रोचना लगाकर उसीको उन्होंने ओढ़ लिया—वही उनका रेशमी दुशाला हो गया। उनके ललाटवर्ती तीसरे नेत्र में, कुछ कुछ अरुणिमा लिये हुए जो बड़ी ही विमल नेत्र-कनीनिका चमक रही थी वही मानों हरताल का तिलक हो गई। अब रहे गहने, सो बड़े बड़े साँपों को लपेट कर उन्हीं से शिवजी ने गहनों का काम लिया। किसी के तो उन्होंने कड़े बनाये, किसी के बाज़ू-बन्द, किसी के कुण्डल, किसी के हार, किसी का कुछ, किसी का कुछ। गहनों के आकार के अनुसार ही उन साँपों के शरीर तोड़े मरोड़े गये। परन्तु शरीर विकृत हो जाने पर भी उनके फन-रूपी रत्नों की शोभा में कुछ भी अन्तर न पड़ा। वे सब ज्यों के त्यों पूर्ववत् चमकते रहे। चन्द्रमा की कला को तो शिवजी दिन रात ही अपने शीश पर धारण किये रहते हैं। उसे तो वे कभी क्षण भर के लिए भी दूर नहीं करते। इस कारण चूड़ामणि धारण करने की उन्हें आवश्यकता ही न हुई। चन्द्रमा तो उनके लिए बना बनाया ही चूड़ामणि था। शिवजी ने पसन्द भी ऐसे चन्द्रमा को किया है कि बाल्य-दशा में होने के कारण उसमें कलङ्क की रेखा भी नहीं दिखाई देती। फिर, एक बात और भी है। शिवजी का चन्द्रमा दिन को भी खूब चमका करता है। चूड़ामणि में यह बात कहाँ? दिन को तो उसकी प्रभा बहुत ही कम हो जाती है।

इस प्रकार सामर्थ्यशाली शिवजी ने बड़ा ही विचित्र विवाह-वेश धारण किया। जैसा अद्भुत उनका सामर्थ्य वैसा ही अद्भुत उनका वेश! दोनों की विधि ठीक मिल गई।

सज चुकने पर शिवजी की दृष्टि, गणों के द्वारा लाई गई

और पास ही रक्खी हुई, तलवार पर पड़ी। वह खूब चमचमा रही थी। उसमें शिवजी का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। अतएव उस खड्ग ने ही शिवजी के लिए आईने का काम दिया। उसी में उन्होंने अपने विवाहोचित वेश को देख लिया और चलने के लिए तैयार हो गये।

महादेवजी के प्रधान गण नन्दी ने उनके वाहन बैल की विशाल पीठ पर पहले ही से बाघम्बर बिछा रक्खा था। सवार होने के लिए शिवजी को पास आया देख बैल ने भक्तिभाव के उद्रेक से अपने शरीर को कुछ संकुचित कर दिया; वह झुककर खड़ा हो गया। नन्दी के हाथ के सहारे शिवजी उस पर सवार हो गये। उस पर क्या मानों कैलाश-शिखर ही पर वे चढ़ गये।

इस प्रकार बैल पर सवार हो कर शिवजी ने हिमालय के नगर का रास्ता लिया। उनके पीछे पीछे सप्त-मातृकायें भी चलीं। वे भी अपने अपने वाहनों पर सवार थीं। वाहनों के जल्दी जल्दी चलने के कारण मातृकाओं के कर्ण-कुण्डल हिल हिल कर अपूर्व शोभा दे रहे थे। उनके प्रभा-मण्डलधारी मुखों ने आकाश में कमल से खिला दिये। कनक-कान्तिवाली उन सप्तमातृकाओं के पीछे सफ़ेद सफ़ेद नर-कपालों के गहने पहने हुए कराला कालीजी भी चलीं। दूर चमकने वाली बिजली के बहुत पीछे सफ़ेद बगलों वाली काली काली मेघ-घटा जैसी शोभा पाती है वैसी ही शोभा कनकाभ मातृकाओं के पीछे चलनेवाली काली ने भी पाई।

शिवजी के गण माङ्गलिक बाजे बजाते हुए आगे बढ़े। उनके बाजों की ध्वनि देवताओं के विमानों तक जा पहुँची। क्योंकि देवता लोग शिवजी की बारात में शामिल होने के लिए पहले

ही से आकाश में आगये थे। गणों के बजाये हुए बाजों की आवाज़ सुनते ही वे जान गये कि शिवजी की बारात कैलास से चल पड़ी। अतएव कैलाशनाथ की सेवा करने के लिए अब हमें भी झट पट चल देना चाहिए। यह सोच कर देवता लोग शिवजी के पास आकर उपस्थित हो गये।

सूर्य ने विश्वकर्मा का बनाया हुआ नवीन छाता शिवजी पर लगाया। उस छाते पर चढ़े हुए शुभ्रवस्त्र का प्रान्तभाग शिव जी के सिर के बिलकुल पास आ गया। अतएव ऐसा मालूम होने लगा जैसे शिवजी के सिर पर गङ्गाजी की शुभ्र धारा हो गिर रही हो।

गङ्गा और यमुना अपने अपने हाथ में चमर लेकर भगवान् शङ्कर पर ढारने लगीं। शिवजी की चमरग्राहिनी होने पर उन्हें यद्यपि अपना नदीरूप छोड़ना पड़ा तथापि वे हंस-मालिका से संयुक्त ही सी दिखाई दीं। चमर भी सफ़ेद और हंस भी सफ़ेद। इस कारण नदी का रूप न रहने पर भी, हंसों से उनका साथ फिर भी बना ही सा रहा।

श्रीवत्सचिह्नधारी भगवान् विष्णु और ब्रह्मा जी सब से पहले शिवजी के सम्मुख आये। उन्हों ने शिवजी का जय-जय-कार करके उनकी महिमा को उसी तरह बढ़ा दिया जिस तरह कि हवि से अग्नि की महिमा बढ़ जाती है। ब्रह्मा और विष्णु को शिवजी का जय-जय-कार करते देख, उनमें छोटे बड़े होने की शङ्का करना उचित नहीं। क्योंकि ये तीनों देवता एक ही मूर्ति के जुदा जुदा तीन भाग हैं। इनमें न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। इनकी छुटाई बड़ाई सर्व-साधारण है। कभी तो शिवजी विष्णु के पहले हो जाते हैं, कभी विष्णुजी शिव के पहले। कभी शिव और विष्णु दोनों के पूर्ववर्ती ब्रह्मा हो जाते हैं और कभी हरि और हर स्वयं ही ब्रह्मा के पूर्ववर्ती हो जाते

हैं । अतएव ब्रह्मा और विष्णु का शिवजी के सामने आना और जय-जय-कार करना किसी प्रकार अनुचित नहीं ।

ब्रह्मा और विष्णु के अनन्तर इन्द्रादिक बड़े बड़े लोकपाल भी शिवजी के सामने आकर हाज़िर हुए । परन्तु उनके सामने आने के पहले ही उन्होंने अपने अपने छत्र, चमर, वाहन आदि ऐश्वर्यसूचक चिह्न दूर छोड़ दिये । बड़े ही नम्रभाव से सीधे-सादे रूप में वे शिवजी के प्रधान गण नन्दी के पास आये । आकर उन्होंने उस से इशारे से कहा—"कृपा करके शिवजी के दर्शन करा दीजिए"। इस पर नन्दी ने उनका परिचय शिव जी से कराया । तब उन लोगों ने हाथ जोड़ कर भक्तिभावपूर्वक शिवजी को प्रणाम किया । देवताओं को प्रणाम करते देख शिव जी ने उनके पद, अधिकार और योग्यता के अनुसार उनका सत्कार किया । ब्रह्मा ने प्रणाम किया तो शिवजी ने अपना सिर हिला दिया । विष्णु ने प्रणाम किया तो उन्होंने वाणी द्वारा उनकी सम्भावना की । इन्द्र ने प्रणाम किया तो मुसकरा कर उसके प्रणाम का उत्तर दिया । बाक़ी देवताओं के प्रणाम करने पर शिवजी ने उनकी तरफ़ सिर्फ़ आँख उठा कर देख भर दिया ।

इसके अनन्तर शङ्कर के सामने सप्तर्षि उपस्थित हुए और 'जय' बोल कर उन्होंने आशीर्वाद दिया । उनको देख कर शिव-जी कुछ मुसकराये और कहा—"याद है न ? इस बड़े विवाह-यज्ञ में वैवाहिककार्य-सम्पादन के लिए आपको अध्वर्यु बनाने का निमन्त्रण मैंने पहले ही दे रक्खा है । अब आपही को मेरा पुरोहित बनना पड़ेगा" ।

इस प्रकार सब का आदर-सत्कार हो चुकने पर विश्वावसु आदि नामी नामी गन्धर्व शिवजी का त्रिपुर-विजय-सम्बन्धी

यश गाते हुए आगे बढ़े। उनके पीछे इन्दुशेखर शङ्कर ने हिमालय के नगर का रास्ता लिया। बारात रवाना हुई।

शिवजी के इन चरित्रों को देख कर किसी को यह शङ्का न करनी चाहिए कि सांसारिक विकारों के वशीभूत होने के कारण शिवजी ने यह सब आडम्बर रचा। नहीं, ऐसे विकार तो उन्हें छू तक नहीं गये—अज्ञानरूपी अन्धकार तो उनके पास तक नहीं फटक सका। उनके इन विवाहादिक कार्यों को उनकी एक छोटी मोटी लीला मात्र समझनी चाहिए। यह तो उनका एक खेल है; और कुछ नहीं।

शिवजी के वाहन बैल की चाल बड़ी ही सुन्दर थी। उस की गर्दन पर सोने की छोटी छोटी घण्टियाँ बँधी थीं। चलते समय वे बड़ाही अतिसुखद शब्द करती थीं। वह अपने सींगों को ऊपर उठाये हुए आकाश-मार्ग से मेघों के इतना पास पास जा रहा था कि उसके सींग कभी कभी मेघों के भीतर घुस जाते थे और उनके छोटे छोटे टुकड़े सींगों की नोकों पर लग जाते थे। इस कारण वह बैल ऐसा मालूम होता था जैसे किसी खाई को वह अभी अभी तोड़ आया हो और उसका कीचड़ उसके सींगों पर लग गया हो। शिवजी इसी बैल पर सवार चले आ रहे थे। उनके नेत्रों की पीली पीली किरणें सदा उन के वाहन के आगे ही रहती थीं। बात यह थी कि शिवजी की दृष्टि हिमालय के नगर की ओर लगी थी। वे बराबर उसी तरफ़ दृष्टि किये यह देखते थे कि नगर अभी और कितनी दूर है; यहाँ से दिखाई देता है या नहीं। बैल स्वयं ही बड़ा वेगगामी था; तथापि शिवजी की दृष्टिपंक्तिरूपिणी सोने की रस्सियों से वह आगे की ओर और भी खिंचा सा जा रहा था। वे दृष्टि-पंक्तियाँ उसकी नाक की रस्सी का सा काम कर रही थीं। एक तो वह स्वभाव ही से द्रुतगामी दूसरे

शिवजी की दृष्टि का आकर्षण। फिर भला, क्यों न वह बात की बात में ओषधिप्रस्थ नगर के पास पहुँच जाय? शैलराज हिमालय के द्वारा रक्षित वह नगर ऐसा वैसा न था। जब से वह बसा तब से इसे किसी भी शत्रु केआक्रमण का कष्ट नहीं उठाना पड़ा।

शिवजी की बारात नगर के पास पहुँचना चाहती है, यह सुनते ही नगर-निवासियों का कुतूहल बढ़ गया। वे शिवजी के मार्ग की ओर मुँह करके बड़े चाव से देखने लगे। तब तक महादेवजी नगर के बाहर पहुँच ही गये। त्रिपुर-विजय के समय छोड़े गये अपने ही बाणों से चिह्नित आकाशपथ से वे नीचे आये और अपने वाहन की पीठ से ज़मीन पर उतर पड़े। हिमालय को पहले ही से ख़बर हो गई थी कि शिवजी नगर के पास पहुँचने ही वाले हैं। अतएव उनकी अगवानी के लिए वह एक बड़े ही विशालकाय हाथी पर चढ़ कर रवाना हुआ। उसके साथ ही बहुमूल्य वस्त्रालङ्कार धारण किये हुए उसके बन्धु-बान्धव भी बड़े बड़े हाथियों पर सवार होकर चले। हाथियों के उस जमघट को देख कर ऐसा मालूम होने लगा जैसे अनेक रङ्गों के फूलों से लदे हुए बड़े बड़े वृक्षों वाले, हिमालय के अधोवर्ती कगार ही चले आ रहे हों।

नगर का फाटक खोल दिया गया। भीतर से हिमालय और उसके बन्धु-बान्धवों का समूह फाटक के पास पहुँचा और बाहर से शिवजी के साथी सुरों का। उन दोनों समूहों के मिलन से जो तुमुल नाद उत्पन्न हुआ वह दूर दूर तक व्याप्त होगया। एक मात्र पुल को तोड़ कर पानी के दो प्रचण्ड प्रवाह जैसे आपस में मिल जाते हैं वैसे ही वे दोनों जनसमूह भी नगर के फाटक पर मिल कर एक हो गये।

शिवजी को सामने देख उनकी महिमा के प्रभाव से हिमा-

लय का सिर आप ही आप झुक गया। अतएव जब जगद्वन्द्य शिवजी ने हिमालय को प्रणाम किया तब वह मन ही मन बहुत लज्जित हुआ। उसने कहा, मैं इनका श्वशुर हूँ, यह बात मैं भूल ही गया। इनकी महिमा की प्रेरणा से बिना प्रयत्न के ही मेरा सिर पहले ही झुक गया और मैंने जाना भी नहीं।

शिवजी को देखकर हिमालय के हृदय में प्रीति का प्रवाह उमड़ आया और मारे खुशी के उसका मुख-कमल खिल उठा। उसके मुख की शोभा बहुत बढ़ गई। शिवजी से मिलकर वह उनके आगे हुआ और पैर की गाँठ तक गहरे फूल बिछे हुए नगर के सबसे चौड़े मार्ग से वह शिवजी को अपने धन-धान्य-पूर्ण महलों को ले चला।

इतने में हिमालय की नगर-निवासिनी नारियों को समाचार मिला कि आगे आगे हिमालय और उनके पीछे पीछे शिवजी आ रहे हैं। अतएव शिवजी का दर्शन करने के लिए अपने अपने मकानों की छतों पर वे चढ़ गईं। शूलपाणि शिवजी के दर्शनों के चाव से वे इतनी उत्कण्ठित हो उठीं कि उन्होंने घर के सारे काम-काज छोड़ दिये। जो जिस काम को कर रही थी वह उसे वैसा ही छोड़कर खिड़की के पास दौड़ आई।

एक स्त्री अपने बाल गूँथ रही थी। वह वैसी ही खुली अलकें लेकर उठ दौड़ी। इससे उनमें गुथे हुए फूल ज़मीन पर गिरते चले गये। परन्तु इसकी उसे ख़बर भी न हुई। एक हाथ से अपनी वेणी पकड़े हुए वह वैसी ही चली गई। जब तक खिड़की के पास नहीं पहुँची तब तक उसे अपने खुले हुए बालों की ख़बर ही न हुई। जब बालों में हाथ ही लगाया था तब बाँधते कितनी देर लगती। परन्तु उसे एक क्षण की भी देर सह्य न हुई।

एक और स्त्री अपने पैरों पर महावर लगवा रही थी। उसका दाहना पैर नाइन के हाथ में था। उस पर आधा

लगाया हुआ गीला महावर चुहचुहा रहा था। परन्तु इस बात की उसने कुछ भी परवा न की। पैर को उसने नाइन के हाथ से खींच लिया और अपनी लीलाललाम मन्दगति छोड़ कर दौड़ती हुई खिड़की की तरफ़ भागी। अतएव जहाँ पर वह बैठी थी वहाँ से खिड़की तक महावर के बूँद बराबर टपकते और उसके पैर के लाल लाल चिह्न बनते चले गये।

एक और स्त्री उस समय सलाई से काजल लगा रही थी। दाहिनी आँख में तो वह सलाई फेर चुकी थी। पर बाईं में काजल लगाने के पहले ही शिवजी के आने की उसे ख़बर मिली। इस कारण बिना काजल लगाये, सलाई को हाथ में लिये हुए ही, वह खिड़की के पास दौड़ गई।

एक और स्त्री का हाल सुनिए। वह बेतरह घबड़ा कर खिड़की की तरफ़ टकटकी लगाये दौड़ी। चलते समय उसकी साड़ी की गाँठ खुल गई। परन्तु उसे उसने बाँधा तक नहीं। यों ही उसे अपने हाथ से थाँमे हुए वह खिड़की के पास खड़ी रह गई। उस समय उसके उस हाथ के आभूषणों की आभा उसकी नाभि के भीतर चली जाने से अपूर्व ही शोभा हुई।

एक स्त्री अपनी करधनी के दाने पोह रही थी। वह काम आधा भी न हो चुका था कि वह जल्दी से उठ खड़ी हुई और उलटे सीधे पैर बढ़ाती शिवजी के देखने के लिए दौड़ी। इससे करधनी के दाने ज़मीन पर गिरते चले गये। यहाँ तक कि सभी गिर गये। खिड़की के पास पहुँचने पर उसके पैर के अंगूठे में बंधा हुआ डोरा मात्र बाक़ी रह गया।

इस प्रकार उस रास्ते के दोनों तरफ़ जितने मकान थे उनकी खिड़कियों में इतनी स्त्रियाँ एकत्र हो गईं कि सर्वत्र मुख ही मुख दिखाई देने लगे। कहीं तिल भर भी जगह ख़ाली न रह गई। इससे ऐसा मालूम होने लगा कि उन खिड़कियों

में हज़ारों कमल खिले हुए हैं। शिवजी को देखने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हुई उन स्त्रियों के मुख, कमल के सभी गुणों से युक्त थे। कमल में सुगन्धि होती है; मुखों से भी सुवासित मद्य की सुगन्धि आ रही थी। कमलों पर भौंरे उड़ा करते हैं; मुखों पर भी काले काले नेत्र-रूपी भौंरे चञ्चलता दिखा रहे थे।

इतने में चन्द्रमौलि शिवजी पताकाओं और तोरणों से सुशोभित राजमार्ग में आ पहुंचे। उस समय वहाँ के महलों के कंगूरों पर उनके ललाटवर्ती चन्द्रमा की चाँदनी जो पड़ी तो दिन को भी वे रात ही की तरह चन्द्रिका-चर्चित हो गये। उनकी द्युति दूनी हो गई।

पुरवासिनी स्त्रियों ने शिवजी को अपनी आँखों से पीना सा आरम्भ कर दिया। उनकी दर्शनोत्कण्ठा इतनी बढ़ी हुई थी कि उस समय वे संसार के और सभी काम भूल गईं; यहाँ तक कि नेत्रों को छोड़ कर उनकी और और इन्द्रियों ने अपने व्यापार ही बन्द कर दिये। कानों ने सुनना, मुँह ने बोलना और नाक ने गन्ध-ग्रहण करना छोड़ दिया। सारांश यह कि सारी स्त्रियाँ बड़ी ही एकाग्र-दृष्टि से शिवजी को देखने लगीं। उनके निर्निमेष अवलोकन से ऐसा सूचित होने लगा जैसे उनकी अन्य सारी इन्द्रियाँ सम्पूर्ण भाव से उनकी आँखों ही में घुस गई हों।

शिवजी को अच्छी तरह देख चुकने पर पुरवासिनी नारियों की दर्शनोत्कण्ठा जब कुछ कम हुई तब वे परस्पर इस प्रकार बातें करने लगीं—

अत्यन्त कोमलाङ्गी होने पर भी पार्वती ने शिवजी की प्राप्ति के लिए जो इतना दुस्तर तप किया तो कुछ अनुचित नहीं किया। ऐसे महामहिम और त्रिलोकपूज्य पुरुष के लिए यदि

घोर तपस्या न की जायगी तो वह मिलेगा कैसे ? इसकी दासी होने का भी सौभाग्य यदि किसी स्त्री को प्राप्त हो तो उससे वह कृतार्थ हो सकती है। इसकी अर्द्धाङ्गिनी होने वाली के सौभाग्य का तो कहना ही क्या है ! हमने आज तक ऐसा अप्रतिम रूप और कहीं नहीं देखा। यदि ब्रह्मा इन दोनों को परस्पर न मिला देता तो इन्हें इतना सुन्दर बनाने के लिए उसने जो प्रचण्ड परिश्रम किया था वह सारा का सारा अकारथ जाता। लोग कहते हैं कि कुपित होकर शिव ने ही कुसुमायुध का शरीर भस्म कर दिया। परन्तु यह बात विश्वसनीय नहीं। सच तो यह है कि शिवजी को देख कर लज्जा के मारे कुसुमायुध ने स्वयं ही अपना शरीर छोड़ दिया। रूप-सौन्दर्य में शिवजी को अपने से बहुत ही बढ़ा चढ़ा देख कर कुसुमशायक को ही आत्महत्या करनी पड़ी। शिवजी से सम्बन्ध करने का मनोरथ करके हिमालय ने बड़ा ही अच्छा काम किया। पृथ्वी धारण करने के कारण हिमालय का सिर यद्यपि पहले ही से बहुत उन्नत है, तथापि शिवजी के सम्बन्ध से वह अब और भी उन्नत हो जायगा। अतएव शैलराज के सौभाग्य की यथेष्ट प्रशंसा नहीं हो सकती।

हिमालय की राजधानी ओषधिप्रस्थ नगर की नारियों के मुख से निकली हुई ऐसी श्रुति-सुखद बातें सुनते सुनते भगवान् त्रिलोचन हिमालय के आलय में पहुँच गये। वहाँ उस समय इतनी भीड़ थी कि माङ्गलिक खीलों की जो वृष्टि हो रही थी वह ज़मीन तक न पहुँचने पाती थी। उपस्थित जन-समुदाय के बाज़ूबन्दों पर गिर कर वे खीलें वहीं चूर चूर हो जाती थीं।

वहाँ पर विष्णु भगवान् के हाथ के सहारे शिवजी अपने वाहन बैल के ऊपर से इस तरह उतरे जिस तरह कि शरत्काल के शुभ्र मेघ के ऊपर से सूर्य उतर आता है। तदनन्तर कमला-

सब ब्रह्माजी तो आगे आगे चले और शिवजी उनके पीछे हो लिये। उनके पीछे इन्द्रादि देवता, फिर सप्तर्षि, फिर अन्यान्य महर्षि और सब के पीछे शिवजी के गण चले। धीरे धीरे वे लोग हिमालय के महल के भीतरी भाग तक इस प्रकार पहुंच गये जिस प्रकार कि उत्तमोत्तम कार्य अच्छे आरम्भ तक पहुंच जाते हैं।

महल के भीतर पहुँच जाने पर शिवजी को हिमालय ने बड़े ही सुन्दर आसन पर बिठाया। फिर उसने अर्घ्य और मधुर मधुपर्क आदि से उनका सत्कार किया। भेंट में बहुत से रत्न भी उसने दिये। तदनन्तर उसने शिवजी को नवीन वस्त्र अर्पण किये। मन्त्रोच्चारण-पूर्वक अर्पण की गई इन सब वस्तुओं को शिवजी ने सादर ले लिया। जिस वस्तु के दान-समय जो मन्त्र पढ़ना चाहिए वह मन्त्र पुरोहित पढ़ते गये और शिवजी यथाविधि उन वस्तुओं को ग्रहण करते गये।

उसके अनन्तर रनिवास में आने जाने वाले, बड़े ही कार्य-कुशल और विनीत सेवकों को आज्ञा हुई कि तुम शिवजी को पार्वती के पास ले चलो। बहुमूल्य दुकूल धारण किये हुए शिवजी को वे लोग जिस समय पार्वती के पास ले जाने लगे उस समय ऐसा मालूम हुआ जैसे शुभ्र फेन से परिपूर्ण समुद्र को नवोदित चन्द्रकिरणों का समूह किनारे की भूमि के पास ले जा रहा है। उस समय कुमारी पार्वती के मुखचन्द्र की कान्ति बहुत विशेष हो रही थी। पार्वती के पास शिवजी जो पहुँचे तो उनके नेत्ररूपी कुमुद प्रफुल्ल हो गये और उनका अन्तःकरण-रूपी सलिल निर्मल हो गया। षोडश कलाओं वाले कलाधर से युक्त शरद्-ऋतु के समागम से जनसमूह का मन जिस प्रकार प्रसन्न और नेत्र तृप्त हो जाते हैं उसी प्रकार चन्द्राननी पार्वती के समागम से महादेवजी का मन प्रसन्न और आँखें विकसित हो

गईं । पास पास बैठने पर शिव और पार्वती दोनों के लोचन चञ्चलता और कातरतापूर्ण हो गये । छिप छिप कर वे परस्पर देखने और फिर एक दूसरे के ऊपर से अपनी दृष्टि हटा लेने लगे । कुछ देर तक उन दोनों के सतृष्ण लोचनों ने इसी तरह लज्जाजनित सङ्कोच की यन्त्रणा सहन की ।

अन्यान्य वैवाहिक कृत्य हो चुकने पर शैलराज ने कोमल कोमल लाल अँगुलियों वाला पार्वती का हाथ शिवजी के हाथ पर रख दिया । इस प्रकार महादेवजी के द्वारा पार्वती का पाणिग्रहण होने पर उनसे भयभीत हुए कुसुमशायक को अपने आविष्कार का अच्छा मौक़ा मिला । पार्वती के शरीर में उसने अपने शरीर को छिपा रक्खा था । उसे अब उसने प्रकट करना चाहा । अतएव शिवजी के द्वारा ग्रहण किये गये पार्वती के उस हाथ के बहाने वह अङ्कुरित हो गया । अर्थात् पार्वती का वह हाथ काम के प्रथमाङ्कुर के सदृश मालूम हुआ । शिवजी के हाथ का स्पर्श होते ही पार्वती का शरीर कराटकित हो गया—उस पर रोमाञ्च हो आया । इधर शिवजी की अँगुलियों पर भी पसीने के कण दिखाई देने लगे । एक दूसरे के हाथ का संयोग होते ही मनोभव की वृत्ति उन दोनों में एक सी बँट गई । प्रस्वेद और रोमाञ्च के बहाने मनोभव ने अपना प्रभाव दोनों में एक सा प्रकट कर दिखाया ।

लोक में पाणिग्रहण के समय शिव-पार्वती के सान्निध्य से ही वधू-वर की शोभा बढ़ जाती है । उनकी मूर्तियों की स्थापना ही मङ्गल-जनक मानी जाती है । फिर भला जब वे स्वयं ही पाणिग्रहण के कार्य में निरत हुए तब उनकी कान्ति और शोभा का कहना ही क्या है ।

अग्नि की प्रदक्षिणा करते समय शिव-पार्वती के जोड़े ने अपूर्व ही शोभा प्राप्त की । उस समय देखने वालों को ऐसा

जान पड़ने लगा जैसे सुमेरु की प्रदक्षिणा करने वाला दिन-रात का जोड़ा एक दूसरे में मिल सा गया हो। शिव-पार्वती ने अग्नि की यथाविधि तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा के समय एक दूसरे का अङ्गस्पर्श होने से उन्हें इतना आनन्द हुआ कि उस आनन्द के अतिरेक से उनकी आँखें बन्द हो गईं। अग्नि की प्रदक्षिणा हो चुकने पर पुरोहित ने पार्वती से कहा कि इस बढ़ी हुई लपट-वाली आग में खीलें छोड़ दे और उसी तरफ़ अपना मुख करके बैठ जा। खीलें डालने से निकले हुए धुयें की सुगन्धि तुझे सूँघनी चाहिए। पार्वती ने पुरोहित की आज्ञा का पालन किया। वह उस धुयें को सूँघने लगी। जब धुयें की शिखा उसके कपोलों पर पहुँची तब क्षणभर ऐसा मालूम हुआ मानों पार्वती ने कानों पर नील कमल खोंस रक्खा है। आग की तरफ़ मुँह करके यद्यपि पार्वती ने बहुत ही थोड़ी देर तक धुयें को सूँघा तथापि उतने ही से उसके लाल लाल कपोलों पर पसीना आ गया और उसकी आँखों में लगा हुआ काजल गीला होकर बह चला। बात यह हुई कि उस आचार-धूम के लगने से पार्वती की आँखों में आँसू आ गये। धुवाँ लगने से उसके कानों में खोंसे हुए जौ के नवीन अङ्कुर भी कुम्हला गये।

आचार-धूम का ग्रहण हो चुकने पर पुरोहित ने वधू पार्वती से कहा—"देख, शिवजी के साथ तेरा विवाह हो गया। यह अग्नि इस बात की गवाह है। अब तू बिना किसी सोच विचार के अपने पति के साथ यथेष्ट धर्माचरण कर सकती है"। ग्रीष्म-काल की गरमी से अत्यन्त तपी हुई पृथ्वी, इन्द्र के बरसाये हुए पहले पानी को जिस तरह बड़ी ही उत्कण्ठा से पी लेती है उसी तरह पार्वती ने अपने गुरु के इन वचनों को अपने कान आँखों तक फैला कर उनसे पी लिया।

गईं । पास पास बैठने पर शिव और पार्वती दोनों के लोचन चञ्चलता और कातरतापूर्ण हो गये । छिप छिप कर वे परस्पर देखने और फिर एक दूसरे के ऊपर से अपनी दृष्टि हटा लेने लगे । कुछ देर तक उन दोनों के सतृष्ण लोचनों ने इसी तरह लज्जाजनित सङ्कोच की यन्त्रणा सहन की ।

अन्यान्य वैवाहिक कृत्य हो चुकने पर शैलराज ने कोमल कोमल लाल अँगुलियों वाला पार्वती का हाथ शिवजी के हाथ पर रख दिया । इस प्रकार महादेवजी के द्वारा पार्वती का पाणिग्रहण होने पर उनसे भयभीत हुए कुसुमशायक को अपने आविष्कार का अच्छा मौक़ा मिला । पार्वती के शरीर में उसने अपने शरीर को छिपा रक्खा था । उसे अब उसने प्रकट करना चाहा । अतएव शिवजी के द्वारा ग्रहण किये गये पार्वती के उस हाथ के बहाने वह अङ्कुरित हो गया । अर्थात् पार्वती का वह हाथ काम के प्रथमाङ्कुर के सदृश मालूम हुआ । शिवजी के हाथ का स्पर्श होते ही पार्वती का शरीर कण्टकित हो गया—उस पर रोमाञ्च हो आया । इधर शिवजी की अँगुलियों पर भी पसीने के कण दिखाई देने लगे । एक दूसरे के हाथ का संयोग होते ही मनोभव की वृत्ति उन दोनों में एक सी बँट गई । प्रस्वेद और रोमाञ्च के बहाने मनोभव ने अपना प्रभाव दोनों में एक सा प्रकट कर दिखाया ।

लोक में पाणिग्रहण के समय शिव-पार्वती के सान्निध्य से ही वधू-वर की शोभा बढ़ जाती है । उनकी मूर्तियों की स्थापना ही मङ्गल-जनक मानी जाती है । फिर भला जब वे स्वयं ही पाणिग्रहण के कार्य में निरत हुए तब उनकी कान्ति और शोभा का कहना ही क्या है ।

अग्नि की प्रदक्षिणा करते समय शिव-पार्वती के जोड़े ने अपूर्व ही शोभा प्राप्त की । उस समय देखने वालों को ऐसा

जान पड़ने लगा जैसे सुमेरु की प्रदक्षिणा करने वाला दिन-रात का जोड़ा एक दूसरे में मिल सा गया हो। शिव-पार्वती ने अग्नि की यथाविधि तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा के समय एक दूसरे का अङ्गस्पर्श होने से उन्हें इतना आनन्द हुआ कि उस आनन्द के अतिरेक से उनकी आँखें बन्द हो गईं। अग्नि की प्रदक्षिणा हो चुकने पर पुरोहित ने पार्वती से कहा कि इस बढ़ी हुई लपट-वाली आग में खीलें छोड़ दे और उसी तरफ़ अपना मुख करके बैठ जा। खीलें डालने से निकले हुए धुयें की सुगन्धि तुझे सूँघनी चाहिए। पार्वती ने पुरोहित की आज्ञा का पालन किया। वह उस धुयें को सूँघने लगी। जब धुयें की शिखा उसके कपोलों पर पहुंची तब लगभग ऐसा मालूम हुआ मानों पार्वती ने कानों पर नील कमल खोंस रक्खा है। आग की तरफ़ मुँह करके यद्यपि पार्वती ने बहुत ही थोड़ी देर तक धुयें को सूंघा तथापि उतने ही से उसके लाल लाल कपोलों पर पसीना आ गया और उसकी आँखों में लगा हुआ काजल गीला होकर बह चला। बात यह हुई कि उस आचार-धूम के लगने से पार्वती की आँखों में आँसू आ गये। धुवाँ लगने से उसके कानों में खोंसे हुए जौ के नवीन अङ्कुर भी कुम्हला गये।

आचार-धूम का ग्रहण हो चुकने पर पुरोहित ने वधू पार्वती से कहा—"देख, शिवजी के साथ तेरा विवाह हो गया। यह अग्नि इस बात की गवाह है। अब तू विना किसी सोच विचार के अपने पति के साथ यथेष्ट धर्माचरण कर सकती है"। ग्रीष्म-काल की गरमी से अत्यन्त तपी हुई पृथ्वी, इन्द्र के बरसाये हुए पहले पानी को जिस तरह बड़ी ही उत्कण्ठा से पी लेती है उसी तरह पार्वती ने अपने गुरु के इन वचनों को अपने कान आँखों तक फैला कर उनसे पी लिया।

इसके अनन्तर पार्वती के परमदर्शनीय पति शङ्कर ने उससे कहा कि ध्रुव के दर्शन कर लो। इस पर बड़ी कठिनता से उसने अपने मुख को ज़रा सा ऊपर की ओर उठा दिया। लज्जा के मारे उसके मुख से उस समय स्पष्ट बात न निकली। बहुत ही धीरे स्वर में बड़े सङ्कोच से उसने सिर्फ़ इतना कहा—"देख लिया"।

कर्मकाण्ड के उत्तम ज्ञानी पुरोहित के द्वारा महादेव-पार्वती का विवाह जब हो चुका तब संसार के माता-पिता उमा-महेश्वर ने कमलासन पर बैठे हुए पितामह ब्रह्मा को प्रणाम किया। पार्वती के प्रणाम के उत्तर में तो ब्रह्मा ने यह कह कर उसका अभिनन्दन किया कि हे कल्याणी! तू वीर-माता हो। परन्तु वागीश्वर होकर भी शिवजी के प्रणाम का उससे कुछ भी उत्तर न बन पड़ा। वह यह सोच कर चिन्तित हो गया कि ये तो सर्वथा निरीह हैं। इन्हें किसी वस्तु की आकांक्षा ही नहीं। अतएव इन्हें आशीर्वाद दिया जाय तो क्या दिया जाय।

ब्रह्मा को प्रणाम कर चुकने पर शिव-पार्वती फूल बिछी हुई एक चौकोनी वेदी पर आये। उस पर सोने का सिंहासन रक्खा था। उसी पर वे दोनों बैठ गये। उनके बैठ जाने पर उनके ऊपर गीले मङ्गलाक्षत डालने की लौकिक रीति का परिपालन हुआ। वह हो चुकने पर लक्ष्मीजी ने आकर वधू-वर के ऊपर कमल-पत्र धारण किया। इस कमलपत्ररूपी छत्र के प्रान्त-भाग में जल-बिन्दु छाये हुए थे। इस कारण वे छाते के किनारे किनारे चारों ओर टंके हुए मोतियों से भी अधिक सुन्दर मालूम होते थे। ऐसे मनोहर कमलातपत्र को, उसका नाल-रूपी दण्ड थाँभे हुए, कुछ देर तक लक्ष्मीजी उनके ऊपर लगाये रहीं। लक्ष्मीजी को शिव-पार्वती की इस प्रकार सेवा करते देख सरस्वतीजी भी वहाँ आ गईं। उन्होंने दो प्रकार की वाणी से

शिव-पार्वती की स्तुति की। संस्कार-पवित्र शुद्ध संस्कृत-श्लोकों से तो शिवजी को उन्होंने प्रसन्न किया और सहज ही समझने योग्य प्राकृत भाषा में रचे गये पद्यों से पार्वतीजी को।

विवाह की सारी विधि के समाप्त होने पर शिव-पार्वती को नाटक दिखाया गया। नाटक करनेवाली अप्सरायें थीं। वे इस काम में बहुत ही प्रवीण थीं। भाव बताने और प्रसङ्गानुरूप अङ्गविक्षेप करने में वे अद्वितीय थीं। कौशिकी आदि वृत्तियों में से जो वृत्ति जिस रस के अनुकूल थी उसका मर्म्म वे अच्छी तरह जानती थीं। तथा कौन राग किस रस के अनुकूल है, इसका भेद भी उन्हें ज्ञात था। इस प्रकार के नृत्य-गीत में निपुण उर्वशी आदिक अप्सराओं के द्वारा खेला गया एक नया नाटक कुछ देर तक देख कर शिव-पार्वती बहुत प्रसन्न हुए।

इसके पश्चात् साथ गये हुए देवता शिवजी के पास आये। अपने किरीटों पर हाथ की अञ्जली बाँध कर उन्होंने शिवजी को दण्डवत् प्रणाम किया। फिर उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा—"भगवन्! आपका विवाह हो चुका। अतएव उसके साथ ही पञ्चशर के शाप की अवधि भी पूर्ण हो गई—अब तो उसे फिर अपना शरीर प्राप्त हो गया। अतएव दया करके आज्ञा दीजिए तो अब वह भी आपकी कुछ सेवा करे"। शिवजी का क्रोध शान्त हो चुका था। इस कारण देवताओं की प्रार्थना उन्होंने मान ली और कुसुमायुध के बाणों का निशाना बनना स्वीकार कर लिया। ठीक है, कार्याकार्य का ज्ञान रखने वाले विचारशील जनों के द्वारा अवसर पर की गई प्रार्थना अवश्य ही सफल होती है। ऐसी प्रार्थना को स्वामी अवश्य ही मान लेते हैं।

देवताओं की इच्छा-पूर्ति करके शिवजी ने उन्हें सत्कारपूर्वक बिदा किया। उधर वे अपने अपने स्थान को गये, इधर

इसके अनन्तर पार्वती के परमदर्शनीय पति शङ्कर ने उससे कहा कि ध्रुव के दर्शन कर लो। इस पर बड़ी कठिनता से उसने अपने मुख को ज़रा सा ऊपर की ओर उठा दिया। लज्जा के मारे उसके मुख से उस समय स्पष्ट बात न निकली। बहुत ही धीरे स्वर में बड़े सङ्कोच से उसने सिर्फ़ इतना कहा—"देख लिया"।

कर्मकाण्ड के उत्तम ज्ञानी पुरोहित के द्वारा महादेव-पार्वती का विवाह जब हो चुका तब संसार के माता-पिता उमा-महेश्वर ने कमलासन पर बैठे हुए पितामह ब्रह्मा को प्रणाम किया। पार्वती के प्रणाम के उत्तर में तो ब्रह्मा ने यह कह कर उसका अभिनन्दन किया कि हे कल्याणी! तू वीर-माता हो। परन्तु वागीश्वर होकर भी शिवजी के प्रणाम का उससे कुछ भी उत्तर न बन पड़ा। वह यह सोच कर चिन्तित हो गया कि ये तो सर्वथा निरीह हैं। इन्हें किसी वस्तु की आकांक्षा ही नहीं। अतएव इन्हें आशीर्वाद दिया जाय तो क्या दिया जाय।

ब्रह्मा को प्रणाम कर चुकने पर शिव-पार्वती फूल खिली हुई एक चौकोनी वेदी पर आये। उस पर सोने का सिंहासन रक्खा था। उसी पर वे दोनों बैठ गये। उनके बैठ जाने पर उनके ऊपर गीले मङ्गलाक्षत डालने की लौकिक रीति का परिपालन हुआ। वह हो चुकने पर लक्ष्मीजी ने आकर वधू-वर के ऊपर कमल-पत्र धारण किया। इस कमलपत्ररूपी छत्र के प्रान्त-भाग में जल-बिन्दु छाये हुए थे। इस कारण वे छाते के किनारे किनारे चारों ओर टँके हुए मोतियों से भी अधिक सुन्दर मालूम होते थे। ऐसे मनोहर कमलातपत्र को, उसका नाल-रूपी दण्ड थाँभे हुए, कुछ देर तक लक्ष्मीजी उनके ऊपर लगाये रहीं। लक्ष्मीजी को शिव-पार्वती की इस प्रकार सेवा करते देख सरस्वतीजी भी वहाँ आ गईं। उन्होंने दो प्रकार की वाणी से

शिव-पार्वती की स्तुति की। संस्कार-पवित्र शुद्ध संस्कृत-श्लोकों से तो शिवजी को उन्होंने प्रसन्न किया और सहज ही समझने योग्य प्राकृत भाषा में रचे गये पद्यों से पार्वतीजी को।

विवाह की सारी विधि के समाप्त होने पर शिव-पार्वती को नाटक दिखाया गया। नाटक करनेवाली अप्सरायें थीं। वे इस काम में बहुत ही प्रवीण थीं। भाव बताने और प्रसङ्गानुरूप अङ्गविक्षेप करने में वे अद्वितीय थीं। कौशिकी आदि वृत्तियों में से जो वृत्ति जिस रस के अनुकूल थी उसका मर्म्म वे अच्छी तरह जानती थीं। तथा कौन राग किस रस के अनुकूल है, इसका भेद भी उन्हें ज्ञात था। इस प्रकार के नृत्य-गीत में निपुण उर्वशी आदिक अप्सराओं के द्वारा खेला गया एक नया नाटक कुछ देर तक देख कर शिव-पार्वती बहुत प्रसन्न हुए।

इसके पश्चात् साथ गये हुए देवता शिवजी के पास आये। अपने किरीटों पर हाथ की अञ्जली बाँध कर उन्होंने शिवजी को दण्डवत् प्रणाम किया। फिर उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा—"भगवन्! आपका विवाह हो चुका। अतएव उसके साथ ही पञ्चशर के शाप की अवधि भी पूर्ण हो गई—अब तो उसे फिर अपना शरीर प्राप्त हो गया। अतएव दया करके आज्ञा दीजिए तो अब वह भी आपकी कुछ सेवा करे"। शिवजी का क्रोध शान्त हो चुका था। इस कारण देवताओं की प्रार्थना उन्होंने मान ली और कुसुमायुध के बाणों का निशाना बनना स्वीकार कर लिया। ठीक है, कार्याकार्य का ज्ञान रखने वाले विचारशील जनों के द्वारा अवसर पर की गई प्रार्थना अवश्य ही सफल होती है। ऐसी प्रार्थना को स्वामी अवश्य ही मान लेते हैं।

देवताओं की इच्छा-पूर्ति करके शिवजी ने उन्हें सत्कार-पूर्वक विदा किया। उधर वे अपने अपने स्थान को गये, इधर

शिवजी पार्वती का हाथ पकड़ कर एक ऐसे भवन में गये जहाँ सोने के कलश रक्खे हुए थे और जहाँ ज़मीन पर फूलों से सजी हुई शय्या पहले ही से तैयार थी । वहाँ शिवजी के पास बैठने में पार्वती को इतना सङ्कोच हुआ कि वह अपना मुख तक उनकी तरफ़ न कर सकी । सदा साथ रहनेवाली सखियों की बात का उत्तर तक, शिवजी के सामने, उसके मुँह से न निकला । यह देख कर उसका सङ्कोच दूर करने के लिए शिव-जी ने अपने गणों को बुलाया । उन्होंने अपने मुखों की टेढ़ी मेढ़ी रचना और विकृत चर्य्या से पार्वती को हंसाने की चेष्टा आरम्भ कर दी । इसमें उन्हे सफलता भी हुई । उनकी विचित्र अङ्गभङ्गी देख कर पार्वती यद्यपि खुल कर न हँसी तथापि मन ही मन उसे हंसी अवश्य ही आ गई ।

आठवाँ सर्ग।

शिव-पार्वती का वन-विहार।

वि[वाह] हो चुकने पर पार्वती का सङ्कोच धीरे धीरे दूर हो गया। वह शिवजी के पास बैठने उठने और रहने लगी। क्रम क्रम से शिव-पार्वती परस्पर एक दूसरे का बहुत प्यार करने लगे। क्षण भर के लिए भी एक दूसरे से जुदा होना उनको असह्य हो गया। पार्वती के लिए शिवजी सर्वथा अनुकूल वर थे और शिवजी के लिए पार्वती भी ा अनुकूल वधू थी। पार्वती का जितना प्यार शिवजी थे उतना ही पार्वती भी उनका करती थी। वे दोनों ही सरे को प्रसन्न रखने और उनका मनोरञ्जन करने की चेष्टा थे। उनका पारस्परिक व्यवहार सागर और सुरसरि के था। सुरसरि जिस तरह सागर में पहुंच कर लीन हो है और उससे लौटने की इच्छा नहीं करती, उसी तरह : भी तन्मय-वृत्ति से उसके मुख-रस का पान करता है। और नदी को वह अपनी चित्त-वृत्ति का अतिथि नहीं ा; अपना सारा का सारा हृदय वह गङ्गा ही को दे ा है। शिव-पार्वती के पारस्परिक प्रेम का भी यही हाल

र्वती के साथ शिवजी पूरा एक महीना ससुराल में रहे। क वे शैलराज हिमालय के मन्दिर में रहे, उनके दिन बड़े ख-चैन से बीते। परन्तु उन्होंने देखा कि अपनी कन्या

पार्वती के भावी वियोग की चिन्ता से हिमालय को दुःख हो रहा है। अतएव उन्होंने वहाँ से चल देना ही उचित समझा। उन्होंने सोचा कि दूर रहने से, सम्भव है, हिमालय और मेना को पार्वती की याद कम आवे। यही सोच कर वे हिमालय की आज्ञा से पार्वती को लेकर वहाँ से विदा हो गये और अपने वाहन बैल पर सवार होकर मनोहर मनोहर स्थानों में विहार करने लगे। अपनी इच्छा के अनुकूल वनों और पर्वतों पर जाने में उन्हें कुछ भी कष्ट न हुआ। उनका वाहन बड़ा ही वेगगामी था। बात की बात में वह सैकड़ों कोस दूर जा सकता था। गति भी उसकी सब कहीं अकुण्ठित थी; कोई जगह ऐसी न थी जहाँ उसकी पहुँच न हो। विकट से विकट और दूर से दूर स्थानों में भी वह बिना विशेष प्रयास के जा सकता था। चालाक वह इतना था कि हवा भी उसके सामने कोई चीज़ न थी। उसके चलने का वेग हवा के वेग से भी अधिक था।

ऐसे वेगगामी वाहन पर सवार होकर शिवजी पहले सुमेरु-पर्वत की सैर के लिए चले। पार्वती को तो उन्होंने बैल पर आगे बिठा लिया और आप उसके पीछे बैठ गये। सुमेरु पर पहुँच कर कई दिनों तक उन्होंने सुख-पूर्वक विहार किया। वहाँ विहार करने से उन्हें जो थकावट हुई उसे सोने के कमलों के सुकुमार पल्लवों से रची हुई शय्या पर सो कर उन्होंने दूर कर दिया।

सुमेरु पर कुछ काल रह कर वे मन्दराचल पर चले गये। इस पर्वत की बड़ी महिमा है। विष्णु भगवान् के चरणों के चिह्न इस की शिलाओं पर अब तक बने हुए हैं। देवताओं और दैत्यों ने इसी पर्वत को मथानी बना कर समुद्र मथा था। मथने से और और वस्तुओं के साथ अमृत भी निकला था। उस अमृत के अनन्त छींटे इस पर्वत पर भी पड़े थे। ऐसे महामहिम

मन्दराचल के निचले शिखरों पर, पार्वती के मुख-कमल के भ्रमर बन कर, शिवजी ने कुछ समय तक सानन्द विहार किया।

इसके बाद जगद्गुरु शङ्कर कैलास पर गये। इस पर्वत पर चन्द्रमा की सुखद और शीतल चाँदनी का उन्होंने बहुत समय तक सेवन किया। जब इस पर्वत पर शिवजी की सेवा और शुश्रूषा के लिए रावण आता तब वह अपने सिंहनाद से सारे पर्वत को हिला सा देता। उसकी गंभीर गर्जना सुन कर पार्वती डर जाती और अपने दोनों बाहु शिवजी के कण्ठ में डाल कर उन्हें दृढ़ता से पकड़ लेती। शिवजी यदि चाहते तो इस उत्पात से पार्वती की रक्षा बात की बात में कर सकते थे। वे यदि इशारे से भी कह देते कि यहाँ शोर न करना तो रावण को उनकी आज्ञा का अवश्य ही पालन करना पड़ता। परन्तु उन्होंने ऐसा न किया। उन्होंने कहा, चलो इसी बहाने पार्वती के बाहु-स्पर्श का सुख मिले।

कैलास छोड़ कर, पार्वती को साथ लिये हुए, शिवजी मलयाचल पर चढ़ गये। वहाँ चन्दन के पेड़ों की अधिकता है। इस कारण दक्षिण से बहकर आने वाला पवन जब चन्दन के पेड़ों पर लगता है तब उसमें भी चन्दन की सुगन्धि आ जाती है। इस पर लौंग के भी पेड़ बहुत हैं। उनके कुसुम-केसरों के स्पर्श से लौंग की भी सुगन्धि से पवन सुगन्धित हो जाता है। ऐसे सुन्दर और सुरभि-पूर्ण पवन का स्पर्श शिव-पार्वती को बहुत ही सुखकर हुआ। वहाँ विहार करने और घूमने-फिरने से पार्वती को जो थकावट होती और उसके शरीर पर जो पसीना आ जाता वह इस सुवास-पूर्ण मलयानिल से तत्काल दूर हो जाता।

मलय-पर्वत पर पहाड़ी नदियाँ भी बहुत सी हैं। उनमें

कभी कभी शिव-पार्वती जल-विहार भी करते। शिवजी जब हास्य-विनोदपूर्वक पानी के छींटे पार्वती की आँखों पर मारते तब वह घबरा कर हाथ से अपनी आँखें मूँद लेती। इसका बदला वह शिवजी को तत्काल ही दे देती। इन नदियों में सोने के लाल लाल कमल बहुत होते हैं। उन्हें तोड़कर वह भी शिवजी को तड़ातड़ मारने लगती। जल-विहार करते समय पार्वती की कमर की तागड़ी बहुत ही शोभा पाती। उसे देख कर ऐसा मालूम होता जैसे जल पर तैरती हुई मछलियों की एक और पाँति शोभा पा रही है।

कुछ दिन तक मलयाचल पर विहार करके शिवजी ने इन्द्र के नन्दन वन में प्रवेश किया। यह वन उनको बहुत ही पसन्द आया। इस कारण वे वहाँ पर और स्थानों की अपेक्षा अधिक दिन तक रहे। इस वन में पारिजात के फूल बहुत होते हैं। ये फूल इन्द्राणी के केशों में गूँथने के काम आते हैं। यथार्थ में ये हैं भी इन्द्राणी ही के योग्य। इन्हीं फूलों को तोड़ तोड़ कर शिव-जी ने अपनी प्रिया पार्वती के लिए अपने ही हाथ से कभी तो गजरे बनाये, कभी कण्ठे और कभी हार। कभी कभी उन्हें बीच बीच में खोंस कर उन्होंने पार्वती के केश-कलाप की रचना भी स्वयं ही की। उन्हें इस प्रकार अपनी प्रियतमा के अङ्गों को अलङ्कृत करते देख देवाङ्गनाओं को बड़ा कुतूहल हुआ। उन्होंने शिवजी के इस काम को चाव-भरी आँखों से देखा।

इस प्रकार पार्वती को साथ लिये हुए स्वर्गीय तथा लौकिक सुखों का अनुभव करके शिवजी ने गन्धमादन-वन में प्रवेश किया। उस समय सायङ्काल समीप था। सूर्य का लाल लाल बिम्ब अस्त हो रहा था। उसकी शोभा देखते हुए शिव-

जी सोने की एक सुन्दर शिला पर बैठ गये और अपनी बाईं भुजा पार्वती के कण्ठ पर डाल कर उनको भी उन्होंने अपने पास ही बिठा लिया। फिर अस्ताचलावलम्बी सूर्य की तरफ़ उँगली उठाकर वे अपनी सहधर्मचारिणी से इस प्रकार कहने लगे—

कमल के फूल के तीन भागों में से एक भाग अरुणता का होता है। तेरे नेत्रों का भी यही हाल है। उनमें भी एक तृतीयांश अरुणता है। अतएव तेरे नेत्रों की भी कान्ति कमल ही की कान्ति के सदृश है। कमल का जीवन सूर्य ही के अधीन है। सूर्यास्त होते ही कमल की सारी शोभा नष्ट हो जाती है। इसी से, सन्ध्या होती देख, सूर्य को कमल पर दया आई। उसने सोचा कि मेरे अस्त होते ही कमल की कान्ति भी अस्त होजायगी। इस कारण उसे दिन छिपाने में बहुत सङ्कोच हुआ। परन्तु जब उसने यह सोचा कि जैसी शोभा कमल की है वैसी ही तेरी आँखों की भी है; कमल के सङ्कुचित हो जाने पर भी वह शोभा तेरी आँखों में पूर्ववत् बनी रहेगी; उसका नाश रात को भी न होगा; तब उसे बहुत सन्तोष हुआ। इसी से कमल के सङ्कोच का सोच छोड़कर यह सूर्य दिन का उसी तरह संहार कर रहा है जिस तरह कि प्रलय-काल में ब्रह्मा जगत् का संहार करते हैं।

पार्वती! अपने पिता हिमालय के झरनों को तो ज़रा देख। नीचा होकर सूर्य क्षितिज के पास पहुँच गया है। जब तक वह कुछ ऊँचा था तब तक उसकी दूरगामिनी किरणें झरनों के जल-कणों पर पड़ती थीं। अतएव जल और किरणों के संयोग से झरनों के ऊपर बड़े ही सुन्दर इन्द्र-धनुष उत्पन्न होगये थे। परन्तु सूर्य के अस्ताचलगामी होने से झरनों के जल का संयोग सूर्य की किरणों से छूट गया—झरनों से किरणें दूर हट गईं।

इसी से वे सुन्दर सुन्दर इन्द्र-धनुष भी तिरोहित हो गये । देख, अब एक भी इन्द्र-धनुष नहीं दिखाई देता ।

चक्रवाक के इस जोड़े को देख कर मुझे तो बड़ी ही दया आती है । अभी कुछ ही देर हुई कि ये दोनों पक्षी कमल के केसरों को तोड़ तोड़ कर साथ ही खा रहे थे । परन्तु सायङ्काल होते ही ये अपना खाना पीना भूल गये और एक का मुँह एक तरफ़, दूसरे का दूसरी तरफ़ हो गया । ये दोनों ही एक दूसरे के सर्वथा अधीन हैं । जुदा हो जाने पर इनके दुख का ठिकाना नहीं रहता । देख तो ये कैसे करुणा-पूर्ण स्वर से रो रहे हैं । अब तक ये एक दूसरे से बहुत दूर नहीं हुए थे । पर अब ये अधिकाधिक दूर होते जा रहे हैं । कुछ ही देर में इस जोड़े का एक पक्षी जलाशय के एक तट पर पहुँच जायगा और दूसरा दूसरे तट पर ।

सल्लकी नाम की लता को हाथी बहुत पसन्द करते हैं । जहाँ तक वह मिलती है उसे तोड़ कर वे खा जाते हैं । तोड़ी जाने पर इस लता के टूटे हुए खण्डों से बड़ी ही सुन्दर सुगन्धि निकलती है । जिस जगह इसके पत्ते और डालियाँ गिरती हैं वह जगह सुगन्धित हो जाती है । दिन के समय इन लताओं वाले सुरभि-सम्पन्न स्थलों में घूम फिर कर हाथियों ने उन्हें अब छोड़ दिया है । अब वे उस पानी की तलाश में चले जा रहे हैं जिसमें, सायङ्काल होने के कारण, कमल के फूलों के भीतर भौंरे बन्द हो गये हैं । ऐसे जलाशयों में पहुँच कर ये हाथी ख़ूब पानी पियेंगे और कल इसी समय तक के लिए छुट्टी कर देंगे ।

पार्वती ! तू तो बहुत ही कम बोलती है । तू भी तो कुछ कह । देख तो यह सायङ्कालीन दृश्य कितना सुहावना है । पश्चिम दिशा के अन्त में सूर्य का वह लटका हुआ बिम्ब क्या ही अच्छा मालूम होता है । उसकी प्रतिमायें इस सामने के तालाब

के भीतर दूर तक दिखाई दे रही हैं। इन्हें देखने से ऐसा मालूम होता है जैसे तालाब के ऊपर सोने का पुल सा बँधा हो। तरङ्गमालाकुल सरोवर के जल में सूर्य के सैकड़ों प्रति-बिम्ब दूर तक लहरा रहे हैं। इसी से शङ्का होती है कि कहीं सूर्य ही ने तो अपने प्रति-बिम्ब जोड़ जोड़ कर यह पुल नहीं बना दिया।

ये जङ्गली सुअर इस छोटे से जलाशय के भीतर घुसे हुए कमल की जड़ें खोद खोद कर खा रहे हैं। उसमें इन्होंने लोटें भी ख़ूब लगाई हैं। इसी से जलाशय का जल बिलकुल ही कीचमय हो गया है। दिन भर इसी पङ्कपूर्ण जल में पड़े रहने से इनकी गरमी शान्त हो गई है। अब सायङ्काल हुआ देख बड़ी बड़ी डाढ़ों वाले ये सुअर उसके बाहर निकल रहे हैं।

पार्वती! पेड़ के ऊपर बैठे हुए इस मोर को भी तो देख। इसकी पूँछ के पीले पीले मण्डल कैसे भले मालूम होते हैं। उनका रङ्ग गले हुए सोने के रस के सदृश पीला पीला है। सायङ्काल होने के कारण धूप का रङ्ग भी पीला हो गया है। जैसे जैसे दिन क्षीण होता जाता है वैसे ही वैसे धूप भी क्षीण होती जाती है। इस क्षीणता के कारण ये मोर ही जान पड़ते हैं। ये धूप को पी सा रहे हैं। यदि सायङ्कालीन आतप को मोर न पीते तो वह धीरे धीरे कम क्यों हो जाता?

आकाश तो इस समय ऐसे सरोवर की समता को पहुँच गया है जिसके एक भाग में कीचड़ मात्र रह गया हो, और दूसरे में कुछ जल छिहराता दिखाई दे रहा हो। इस आकाश-रूपी सरोवर के आतपरूपी जल को सूर्य खींचता सा चला जा रहा है। इसके पूर्वी भाग में जितना आतप-जल था सब खिंच गया। पर पश्चिमी भाग में कुछ बाक़ी है। इसी से पूर्वी भाग में जैसे जैसे अँधेरा छाता जाता है वैसे ही वैसे ऐसा मालूम

होता है जैसे आकाशरूपी तालाब का पानी सूख जाने से कीचड़ दिखाई दे रहा हो। हाँ, पश्चिमी भाग में कुछ प्रकाश अब तक बना है। इसी से वह भाग सजल सा मालूम हो रहा है।

मुनियों के ये सम्मुखवर्ती पर्ण-कुटीर इस समय बड़े ही सुन्दर मालूम हो रहे हैं। वन में दिन भर चरने के बाद लौटे हुए मृग उनके भीतर घुस रहे हैं। उन्हीं के साथ साथ मुनियों की पाली हुई सुन्दर सुन्दर गायें भी पर्णशालाओं के भीतर जा रही हैं। सायङ्कालीन हवन के लिए अग्नि जलाई जा रही है। प्रति दिन नियमपूर्वक सींचे जाने के कारण हरे हरे पौधे इन पर्णशालाओं की शोभा बढ़ा रहे हैं।

कमल का फूल प्रायः पूरा सङ्कुचित हो गया। हाँ, बीच में कुछ जगह अभी तक अवश्य ख़ाली है। जान पड़ता है कि भौंरों को रात के समय अपने भीतर प्रीति-पूर्वक स्थान देने ही के लिए कमल ने छेद के बहाने अब तक अपना दरवाज़ा खुला रख छोड़ा है।

सूर्य का बिम्ब तो अब बहुत दूर चला गया। उसमें अब इतनी थोड़ी किरणें रह गई हैं कि जो चाहे उन्हें ख़ुशी से गिन ले। सूर्य के इस बिम्ब से पश्चिम दिशा बहुत ही भली मालूम होती है। उसके संयोग से वह अब ऐसी कन्या की समता को पहुँच गई है जिसने अपने ललाट पर बन्धुजीव नामक फूल को तिलक के समान धारण किया है। पश्चिम दिशा के ललाट पर सूर्य का लाल लाल बिम्ब, अरुण-केसर-पूर्ण बन्धुजीव कुसुम के समान ही जान पड़ता है।

ये बालखिल्य आदि हज़ारों ऋषि साम-गान में बड़े ही निपुण हैं। इनका स्वर इतना मधुर है कि रथ में जुते हुए घोड़े तक इनका गान सुन कर प्रसन्न हो जाते हैं। यह बात घोड़ों की मुखचर्य्या से विदित होती है। ये ऋषि और कुछ नहीं

खाते; केवल सूर्य की किरणों का उष्ण रस पीकर ही जीते हैं। देख तो, ये इस समय कैसे मधुर स्वर से साम-गान करके सूर्य की स्तुति कर रहे हैं। अपना तेज तो अग्नि को और दिन महासागर को सौंप कर भगवान् भास्कर अब अस्त होना ही चाहते हैं। देख, उनके रथ के घोड़े कितने वेग से अस्ताचल की तरफ़ दौड़ रहे हैं। उन्होंने अपनी गर्दन झुका ली है और कानों को आँखों के ऊपर झुका दिया है। रथ के जुए को वे इतनी दृढ़ता से खींच रहे हैं कि जुए की रगड़ से उनकी गर्दन के बाल कट से रहे हैं।

लो, सूर्यास्त हो ही गया। सूर्य का तिरोभाव हो जाने से आकाश की सारी शोभा जाती रही। अब तक आकाश जाग सा रहा था। परन्तु अब वह सो सा गया है। बड़े बड़े तेजस्वियों का यही हाल होता है। उदय के समय उनके कारण जितना स्थान प्रकाशित होता है, अस्त हो जाने पर उतना ही अन्धकार में डूब भी जाता है।

सूर्य की सखी सन्ध्या ने भी अपने धर्म का ख़ूब ही निर्वाह किया। ज्योंही उसने देखा कि रवि का वन्दनीय बिम्ब अस्ताचल पर पहुँच गया त्योंही वह भी उसी के साथ चल दी—उसने भी सहगमन किया—और यही उचित भी था। क्योंकि उदय को प्राप्त होने पर जिस रवि के द्वारा वह पुरस्कृत हुई थी, विपत्ति के समय—अस्त हो जाने पर—भला वह उसके साथ क्यों न जाती? भाग्योदय के समय जिससे उसे पुरस्कार मिला था, आपत्ति के समय उसका साथ देना ही सती स्त्रियों का कर्तव्य है।

हे कुटिल केशों वाली! मेघों की लाल, पीली और भूरी श्रेणियाँ कैसी सुन्दर मालूम होती हैं। जी चाहता है कि इनको देखा ही करें। तू इनको अपनी दृष्टि से पवित्र करेगी, इसी

कारण सन्ध्या ने इन्हें चित्रशलाका से अलङ्कृत सा कर दिया है। तुझे इनका मनोहर दृश्य दिखाने ही के लिए, जान पड़ता है, सन्ध्या ने चित्र खींचने के ब्रश से इनमें तरह तरह के रङ्ग भर दिये हैं।

गेरू आदि उत्पन्न करने वाले पर्वतों के शिखरों, लाल लाल पल्लवों से युक्त पेड़ों, और सिंहों की गर्दनों के केश-समूहों का रङ्ग ठीक उसी तरह का है जिस तरह का कि सायङ्कालीन सूर्य की धूप का होता है। कहीं सूर्य ही ने तो अपनी लाल लाल धूप इन्हें नहीं दे दी? यह सर्वथा सम्भव है। सूर्य ने अस्त होते समय सोचा होगा कि अब तो इस लोक से जाते ही हैं, लाओ अपना आतप-रूपी धन अपने साथियों को दिये जायं। हमारी धूप का भी वही रङ्ग है जो पूर्वोक्त वस्तुओं का है। अतएव इनसे हमारा कुछ सम्बन्ध सूचित होता है और सम्बन्धी ही ऐसे धन के पात्र होते हैं। इसी से मैं समझता हूं कि धातु-शिखरों, कोमल-पल्लवधारी पेड़ों और सिंहों की अयाल का रङ्ग सूर्य ही की बदौलत है।

शैलसुते! पवित्र जल अञ्जली में ले लेकर ये तपस्वी ब्राह्मण सूर्य को अर्घ दे चुके। अब ये आत्मशुद्धि के लिए बड़े आदर से गूढ़ गायत्री-मन्त्र का जप कर रहे हैं। बड़े ही भक्ति-भाव से इन्हों ने सायङ्कालीन सन्ध्योपासन आरम्भ कर दिया है। इस कारण, कृपा करके थोड़ी देर के लिए मुझे भी छुट्टी दे दे तो मैं भी सन्ध्योपासन कर लूं। हे मधुरभाषिणी! मेरे चले जाने पर तुझे कुछ विशेष कष्ट भी न होगा। तेरी ये सखियाँ हास्य-विनोद में बहुत प्रवीण हैं। ये अपनी बातों से तब तक तेरा अच्छी तरह मनोरञ्जन करती रहेंगी।

शिवजी का यह प्रस्ताव पार्वती को अच्छा न लगा। उसने उनकी बात सुनी अनसुनी कर दी। हाँ, अपना अधर कुछ टेढ़ा

करके उसने अपनी अनिच्छा अवश्य प्रकट कर दी। फिर वह पास ही बैठी हुई विजया नाम की सखी से गप-शप करने लगी।

पार्वती के पास से उठकर महेश्वर भी सन्ध्योपासन में लग गये और विधि-पूर्वक मन्त्रोच्चारण करके झटपट उससे निवृत्त हो गये। अपनी बात का उत्तर न देने के कारण उनको यह सूचित हो गया था कि मेरे उठ आने से पार्वती कुपित हो गई है। अतएव सन्ध्योपासन समाप्त करके वे पार्वती के पास तुरन्त ही लौट आये। आकर मुसकराते हुए वे प्रियतमा पार्वती से कहने लगे—

तू तो अकारण ही कुपित हो गई। अब अपने क्रोध को शान्त कर। मैं तुझसे क्षमा-दान की याचना करता हूं। इस सन्ध्या ही ने मुझे तेरे पास से उठाया। उसी की सेवा करने मैं गया था, किसी और की नहीं। मैं तो तेरा सहधर्मचारी हूँ। मेरी वृत्ति सर्वथा चक्रवाक के सदृश है। भला फिर मैं तुझ से किस प्रकार दूर रह सकता हूँ। क्या तू इस बात को नहीं जानती? अतएव तेरा व्यर्थही खिन्न होना न्यायसङ्गत नहीं।

सन्ध्या करने के लिए मेरे चले जाने का कारण तो सुन ले। हे मानिनी! बात यह है कि यह सन्ध्या कोई ऐसी वैसी चीज़ नहीं; यह तो ब्रह्मा का रूपान्तर है। अग्निष्वात्तादि पितरों को उत्पन्न करने के अनन्तर ब्रह्मा ने अपना शरीर छोड़ दिया था। वही शरीर अब, सूर्योदय और सूर्यास्त के समय, सन्ध्या के रूप में पूजा जाता है। इसी से मैं इसका इतना आदर करता हूं। यदि यह बात न होती तो मैं तुझे छोड़ कर कभी न जाता। आशा है, मेरी इस कैफ़ियत को सुन कर तेरी अप्रसन्नता दूर हो जायगी।

देख, सन्ध्या का रूप अब बदलता जा रहा है। अब तक थोड़ा ही अँधेरा था। अब उसकी वृद्धि हो रही है। पूर्व की

ओर अन्धकार बहुत घना हो रहा है, पर पश्चिम की ओर साय-ङ्कालीन अरुणता अभी बाक़ी है। दूर तक फैली हुई इस अरुणता की रेखा को तो देख। जान पड़ता है, गेरू की नदी बह रही है, जिसके पूर्वोत्तर छाया हुआ अन्धकार, तमाल-तरुओं की श्यामल पङ्क्ति को मात कर रहा है। अहा! पश्चिम दिशा में, क्षितिज के पास, अरुणिमा कैसी सुहावनी मालूम होती है। वह बचे हुए सायङ्कालीन प्रकाश की टेढ़ी टेढ़ी रेखा के सदृश है। उसे देख कर ऐसा मालूम होता है मानों सङ्ग्राम-भूमि के ऊपर रुधिर से भरी हुई तलवार किसी ने तिरछी फेंक दी हो।

दिन और रात की सन्धि का प्रकाश अब नहीं दिखाई देता। अब तो वह सुमेरु के पार पहुंच गया। इसीसे अब अन्धकार निरङ्कुश होकर दसों दिशाओं में व्याप्त होरहा है। हे दीर्घ-लोचनी! अब अन्धकार के साम्राज्य का यह हाल है कि कहीं तिल भर भी जगह ऐसी नहीं जहाँ उसका अधिकार न हो। ऊपर-नीचे, दाहने-बायें, आगे-पीछे, इधर-उधर—जहाँ तक दृष्टि जाती है अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है। शैलनन्दिनी! अब तो सारा संसार गहरे अन्धकार के बेठन के भीतर बन्द सा हो गया है। उसकी दशा गर्भस्थ शिशु के सदृश है। गर्भ-स्थित जीव जिस तरह अन्धकार में पड़ा रहता है—न उसे ही कहीं कुछ दिखाई देता है और न उसी को कोई देख सकता है—उसी तरह संसार भी गर्भवास ही सा कर रहा है। अन्धकार से वह घिर सा गया है; अब उसकी कोई चीज़ नहीं दिखाई देती। इस जगत् में कुछ चीज़ें निर्मल और कुछ मलिन हैं; कुछ चल और कुछ अचल हैं; कुछ टेढ़ी और कुछ सीधी हैं। परन्तु इस अन्धकार ने इन सारे गुणों का समीकरण कर दिया। संसार की सारी चीज़ें इस समय एक ही सी दिखाई

दे रही हैं। वह शुद्ध है और यह अशुद्ध, यह चल है और यह अचल, यह वक्र है और यह सरल—इस गुण-विषयक भेद-भाव को अन्धकार ने एकदम दूर सा कर दिया है। असाधुओं के ऐसे महत्त्व को धिक्कार ! शुद्धता और अशुद्धता तथा सरलता और वक्रता आदि भले-बुरे गुणों को एक कर देना, अविवेक की पराकाष्ठा हो गई। परन्तु ऐसे अविवेकियों का राज्य बहुत समय तक नहीं रह सकता। हे सरोजमुखी ! ज़रा पूर्व दिशा की ओर तो आँख उठा। निशा-सम्बन्धी इस अविवेकी तम का नाश करने ही के लिए याज्ञिकों के परम विवेकी राजा चन्द्रमा का उदय हो रहा है। इसी से उस तरफ़ कुछ कुछ शुभ्रता दिखाई देने लगी है। उसे देख कर मन में आता है, मानो पूर्व-दिशा के मुख पर किसी ने केतकी के फूलों का शुभ्र पराग मल दिया है। अब तक चन्द्रमा का बिम्ब मन्दराचल के उसी तरफ़ है। उसका उल्लङ्घन करके अभी वह इस तरफ़ नहीं पहुचा। मन्दराद्रि के उस तरफ़ तो चन्द्रमा है और इस तरफ़ तारकाओं सहित रात। तू यदि अपनी सखियों के साथ बैठी हुई बातें करे और मैं तेरी पीठ पीछे खड़े खड़े चुपचाप तेरी बातें सुनूँ तो मैं मन्दराचल के उस पारवाले चन्द्रमा की ओर तू इस पारवाली तारकायुक्त रात की समता को पहुँच जाय। ठीक है न ? इस उपमा में कोई दोष तो नहीं ?

अहा ! मेरी बात समाप्त भी न होने पाई थी कि निशानाथ का बिम्ब निकल ही आया। प्रातःकाल से लेकर सायङ्काल तक इस बेचारे के इधर आने का रास्ता ही बन्द सा था। दिन बीत जाने पर अब कहीं इसे मुँह दिखाने का मौक़ा मिला है। अतएव चाँदनी के बहाने मुसकराता हुआ यह फिर इधर आ रहा है। पूर्व दिशा की गोपनीय बातें बताने के लिए कहीं रात ही ने तो

इसे नहीं बुलाया ? प्रियतमा की प्रेरणा से जिस तरह कोई उसकी सपत्नी के रहस्यों का वर्णन करता है उसी तरह रात्रि की प्रेरणा से यह चन्द्रमा भी मुसकरा मुसकरा कर पूर्व-दिशा के रहस्यों का वर्णन करने ही के लिए आ सा रहा है। देख तो, इसका बिम्ब कितना लाल है। पकी हुई कदरू की लालिमा से इसकी लालिमा कुछ भी कम नहीं। उधर आकाश में भी इसका बिम्ब दिखाई दे रहा है और इधर सम्मुखवर्ती तालाब के जल में भी। इस प्रकार ऊपर-नीचे अपना एक एक बिम्ब दिखा कर यह चक्रवाक-पक्षियों के जोड़े की दिल्लगी सा कर रहा है। वे बेचारे, रात हो जाने के कारण, एक दूसरे से दूर हो गये हैं। एक तो तालाब के एक किनारे पर है, दूसरा दूसरे किनारे पर। इसने भी एक के दो बिम्ब बना डाले हैं और उन्हें एक दूसरे से दूर कर दिया है। इसी से मैं अनुमान करता हूँ कि अपने एक बिम्ब को आकाश में और दूसरे को नीचे पृथ्वी पर जल के भीतर दिखा कर चन्द्रमा इन पक्षियों को चिढ़ा सा रहा है। वियोगियों की इस तरह हँसी करना अच्छी बात नहीं।

चन्द्रमा की ये नवीन किरणें कैसी मनोहारिणी हैं। कोमल तो ये इतनी हैं कि जवों के नये निकले हुए अङ्कुर भी इतने कोमल नहीं होते। तू यदि इन किरणों के कर्ण-फूल बनाना चाहे तो ख़ुशी से बना सकती है। इन्हें तोड़ने में तुझे कुछ भी कष्ट न होगा। तू इन्हें अपने नखों के अग्रभाग से आसानी से तोड़ सकती है। क्यों, पसन्द है ? पसन्द हो तो एक बार इन्हें तोड़ने का प्रयत्न कर देख।

यह चन्द्रमा तो रसिक भी मालूम होता है। यह अपनी किरणरूपी अँगुलियों से तिमिररूपी केश पकड़ कर, सङ्कुचित सरोज-रूपी लोचन वाले निशा-मुख को चूम सा रहा है।

अभी तक आकाश तिमिराच्छन्न था। उसमें ख़ूब घना अन्धकार छाया हुआ था। नवीन निकले हुए चन्द्रमा की किरणों से वह अन्धकार अब दूर हो गया है। आकाश की दशा अब उस मानस-सरोवर के सदृश हो गई है जो हाथियों के नहाने से गँदला हो जाने के बाद फिर निर्मल हो गया हो।

अब तक तो चन्द्रमा का मण्डल ख़ूब अरुण था; पर अब उसकी अरुणता दूर हो गई है। अब तो वह अपनी स्वाभाविक विशुद्धता को प्राप्त हो गया है। बात यह है कि जो स्वभाव ही से निर्मल है उसमें काल-जन्य दोष से आया हुआ विकार सदा नहीं बना रहता। कुछ समय बाद वह अवश्य ही जाता रहता है।

इस समय चन्द्रमा की चाँदनी सभी ऊँचे ऊंचे स्थानों पर छा गई है। रात्रि-सम्बन्धी अन्धकार के पैर वहाँ से अब बिलकुल ही उखड़ गये हैं। उसे अब निचले स्थानों का आश्रय लेना पड़ा है। यह ठीक ही हुआ है—ब्रह्मा ने गुण और दोष को उनके अनुकूल ही स्थल दिये हैं। उच्चता के लिहाज़ से गुण के लिए तो उसने ऊँचे स्थानों की योजना की है और नीचता के लिहाज़ से दोष के लिए नीचे वाले स्थानों की। नीच आत्माओं को नीचा और उच्च आत्माओं को ऊँचा ही स्थान मिलना चाहिए।

इस पर्वत के अधस्तलवर्ती पेड़ों पर बैठे हुए मोर सुख से सो रहे थे। परन्तु इसके ऊपरी शिखरों पर कलाधर की किरणें फैलते ही चन्द्रकान्त-मणियों से वारिबिन्दु टपकने लगे। वे वहाँ से अधोवर्ती पेड़ों पर गिरे। इस कारण मोरों की निद्रा असमय में ही टूट गई। देख, वे जाग पड़े हैं और अपने पङ्ख झाड़ रहे हैं।

हे सुन्दरी! यह चन्द्रमा तो बड़ा ही खिलाड़ी मालूम होता

है। इसकी किरणें पत्तों और डालियों को पार करती हुई कल्प-वृक्षों के ऊपर से नीचे तक चली गई हैं। उन्हें देख कर ऐसा मालूम होता है जैसे यह अपने किरणरूपी सफ़ेद धागों से इन वृक्षों के पत्तों को पिरो पिरो कर मालायें सी बना रहा हो।

पर्वत का जो भाग ऊँचा है वहाँ तो चन्द्रमा की चन्द्रिका फैली हुई है और जो नीचा है वहाँ अब तक धुँधला अन्धकार है। चाँदनी और अन्धकार से पूर्ण ऊँचे-नीचे स्थानों वाला यह पर्वत, काले काले शरीर पर सफ़ेद भस्म का बहुविध खौर धारण किये हुए मत्त हाथी के सदृश मालूम होता है।

इन कुमुदों ने चन्द्रमा के प्रभा-रस को गले तक पी सा लिया है। जान पड़ता है, इसी से ये उसे हज़म नहीं कर सके और इनके पेट फटते चले जा रहे हैं। ये विकसित नहीं हो रहे; भौंरों की गुञ्जार के बहाने चिल्ला चिल्ला कर ये पेट फटने की व्यथा प्रकट कर रहे हैं। चन्द्रमा की चाँदनी बहुत अधिक पी जाने से ही इनकी यह दशा हुई है; जान तो ऐसा ही पड़ता है।

हे चण्डिके! इन कल्पवृक्षों पर जो सफ़ेद सफ़ेद कपड़े फैले हुए थे वे अब तक पहचाने ही न जाते थे, क्योंकि चन्द्रमा की चाँदनी ने सभी वस्तुओं पर सफ़ेदी सी पोत दी थी। कपड़े भी सफ़ेद और चाँदनी भी सफ़ेद। फिर भला उन्हें कोई कैसे पहचान सकता? परन्तु हवा चलने से अब जो कपड़े उड़ने लगे तो उनका पहचानना सहज हो गया।

फूलों के सदृश अत्यन्त कोमल ये चन्द्र-किरणें, पेड़ों के पत्तों के बीच से छन छन कर, नीचे भूमि पर गिर रही हैं। उनके छोटे छोटे कण ज़मीन पर बिछे हुए से मालूम होते हैं। यदि तेरी सखी इन्हें अपने हाथ से चुन ले तो इनसे तेरी अलकें

अच्छी तरह अलङ्कृत की जा सकती हैं। मुझे तो यह बात सर्वथा सम्भव मालूम होती है।

हे विशदवदनी! उस तरल-विम्ब-वाली योग-तारा का तमाशा तो देख। नवीन विवाहिता कन्या के साथ वर की तरह, इस समय, उसका योग निशानायक के साथ हो रहा है। जान पड़ता है, इसीसे वह भयभीत हुई कँप सी रही है।

पार्वती! तू तो चन्द्रमा के बिम्ब को टकटकी लगाये देख रही है और मैं तेरे कपोलों की स्वाभाविक सुन्दरता पर मुग्ध हो रहा हूँ। वे ऐसे गोरे हैं जैसा कि पका हुआ सरकण्डा नामक तृण होता है। तेरे ऐसे सुन्दर और गोरे कपोलों पर चन्द्रमा की शुभ्र चाँदनी आरोहण सा कर रही है।

लो, गन्धमादन की वनदेवी आ रही है। तुझ पर यह बहुत ही कृपा करती है। इसके हाथ में सूर्यकान्त-मणि के लाल लाल कटोरे में कल्पवृक्षों के फूलों से तैयार किया गया मद्य है। उसे यह तेरे लिए स्वयं ही लेकर उपस्थित हुई है। परन्तु, हे विलासवती! मेरी समझ में तो तेरे लिए मद्य व्यर्थ सा है। मद्यपान से जो बातें होती हैं वे तो तुझमें स्वभाव ही से विद्यमान हैं। मद्य पीने से मुख सुगन्धित हो जाता है, पर तेरे मुख से पीले केसर की सुगन्धि आपही आ रही है। मद्य के प्रभाव से आँखें लाल हो जाती हैं, परन्तु तेरी आँखें तो सदा ही लाल रहती हैं। अतएव, जान पड़ता है, तू सदा ही मद से मत्त है। इस दशा में मद्य-पान तेरे लिए आवश्यक नहीं। तथापि, क्या हुआ, यह तेरी सखी है। तुझ पर इसकी बड़ी भक्ति है। यह तेरा सम्मान भी बहुत करती है। इसीसे यह मद्य का प्याला तेरे लिए लाई है। अतएव इस प्याले का तुझे स्वीकार ही कर लेना चाहिए।

ऐसे उदारतापूर्ण वचन कह कर शिवजी ने वन-देवी के हाथ से उस मधुपूर्ण पात्र को ले लिया और उसे पार्वती को पिला दिया। मद्य पी लेने पर पार्वती नशे में हो गई। उसके मुख पर मद्य-जन्य विकार के चिह्न दिखाई देने लगे। परन्तु उस विकार से उसकी मनोहरता कम होने के बदले और भी बढ़ गई। आम की लता योंही रमणीय होती है। यदि वह किसी अनुपम योग से ख़ूब कुसुमित तथा सुगन्धित कर दी जाय तो फिर उसकी रमणीयता का क्या कहना है!

मद्य-प्राशन के प्रभाव से पार्वती का सङ्कोच-भाव कम हो गया। उसके हृदय में उत्कट अनुराग का अङ्कुर उग आया। वह मद्य और महादेव दोनों के वशीभूत हो गई। उसकी आँखें घूमने लगीं; शरीर पर पसीने के बूंद चमकने लगे; ओठों पर मधुर मुस्कान दिखाई देने लगी। इस अवस्था को पहुंचने पर पार्वती के मुंह की शोभा बड़ी ही विलक्षण हो गई। अतएव शिवजी उसके इस विचित्र शोभाशाली मुख को अपनी आँखों से पीने से लगे। कुछ देर बाद पार्वती की आँखें झुकने लगीं। इस कारण शिवजी ने मन में कहा, अब इसे मणिशिलाओं के घर में ले जाकर सुला देना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने पार्वती से उठने को कहा। जिस समय वह उठी उसकी कमर से लटकी हुई सोने की तागड़ी बहुत ही भली मालूम हुई। शिवजी ने पार्वती को उठा लिया। उसे वे मणियों के घर में ले गये। वहाँ पर बड़ी ही सुन्दर शय्या बिछी हुई थी। उसके ऊपर की चादर हंसों के सदृश शुभ्र थी। वह शय्या सफ़ेद बालू से परिपूर्ण गङ्गाजी के तट के समान सुन्दर मालूम होती थी। उसी पर शिवजी ने पार्वती को लिटा दिया। उस समय वह उस पर शरत्कालीन शुभ्र मेघ के ऊपर रोहिणी के समान लेटी हुई सी जान पड़ी। रात भर शिव-पार्वती ने उसी मणिमय मन्दिर में

शयन किया। प्रातःकाल किन्नरों ने वीणा बजा कर भैरवी अलापना आरम्भ किया। उनका गाना सुनकर विद्वानों के द्वारा स्तुति किये जाने योग्य शिवजी जाग पड़े। प्रातःकाल जब जलाशयों में सुवर्ण-कमल खिलने लगे तब शिव-पार्वतीजी के भी नेत्र-कमल खुल गये। वे दोनों शय्या से उठ बैठे और घर के बाहर निकल आये। उस समय उन्होंने देखा कि कमलों की कलियों को विकसित करने, गन्धमादन-पर्वत के सीमान्तवर्ती वनों से आने और मानस-सरोवर की लहरों को ऊंचा उठाने वाला पवन चल रहा है। ऐसे शीतल, मन्द और सुगन्धिपूर्ण पवन का कुछ देर तक सेवन करने से शिव-पार्वती का सारा आलस्य जाता रहा।

पार्वती को साथ लिये हुए शिवजी इसी तरह बहुत दिनों तक गन्धमादन पर विहार करते रहे। वे हास्य-विनोद और विहार में इतने लीन हो गये कि और किसी बात की उन्हें सुध तक न रही। यदि कभी कोई उनके दर्शनों के लिए आता और पार्वती की सखी विजया उसके आने का समाचार देती तो भी उसे शिवजी के दर्शन न होते। अतएव उसे निराश ही लौट जाना पड़ता। महीने ही दो महीने तक शिवजी की यह दशा न रही। सौ ऋतुओं, अर्थात् कोई सत्रह वर्ष, तक वे इन्द्रियों के सुखानुभव में मग्न रहे। तिस पर भी उनका जी न भरा। दिन-रात समुद्र का जल पीते रहने पर भी जैसे वडवानल की प्यास नहीं बुझती वैसे ही दिन-रात सुखोपभोग करते रहने पर भी शिवजी की भी तृप्ति न हुई।

Printed by Babu Bishambher Nath Bhargava at the
Standard Press Allahabad